अल-रिसाला

मार्च-अप्रैल 2024

अल-रिसाला
मार्च-अप्रैल 2024

CPS International
centre for peace & spirituality

माहनामा 'अल-रिसाला' को हिंदी स्क्रिप्ट में लाने की यह हमारी एक कोशिश है। मुश्किल उर्दू अल्फ़ाज़ को भी आसान कर दिया गया है, ताकि ज़्यादा-से-ज़्यादा लोग इसे पढ़कर फ़ायदा उठाएँ और अपनी ज़िंदगी, अपनी शख़्सियत में मुस्बत (positive) बदलाव ला सकें।

नीचे दी गई हमारी वेबसाइट और सोशल मीडिया पेजिस से मज़ीद फ़ायदा उठाएँ।

संपादकीय टीम

आरिफ़ हुसैन आलम, सैफ़ अनवर
मोहम्मद आरिफ़, फ़रहाद अहमद
ख़ुर्रम इस्लाम क़ुरैशी, इरफ़ान रशीदी

Centre for Peace and Spirituality International
1, Nizamuddin West Market,
New Delhi-110013
info@cpsglobal.org
www.cpsglobal.org

cpsglobal.org
twitter.com/WahiduddinKhan
facebook.com/maulanawkhan
youtube.com/CPSInternational
+91-99999 44118
t.me/maulanawahiduddinkhan
linkedin.com/in/maulanawahiduddinkhan
instagram.com/maulanawahiduddinkhan

To order books of
Maulana Wahiduddin Khan, please contact
Goodword Books
Tel. 011-41827083,
Mobile: +91-8588822672
E-mail: sales@goodwordbooks.com

Goodword Bank Details
Goodword Books
State Bank of India
A/c No. 30286472791
IFSC Code: SBIN0009109
Nizamuddin West Market Branch

विषय-सूची

रमज़ान का महीना	3
अल्लाह की मदद	4
पेटेंट का क़ानून	5
तवाज़ो की सिफ़त	8
सवाल की कसरत	10
मुक़दमा	13
मुताला-ए-हदीस	16
सी०पी०एस० का मिशन	31
ख़वातीन में दावत	34
जन्नत माँ के क़दमों के नीचे	37
कामयाबी का पहला क़ानून	40
डायरी : 1986	42
ऐब-ख़्वानी, क़सीदा-ख़्वानी	65

रमज़ान का महीना

आज (20 मई, 1986 को) दसवाँ रोज़ा है। इस साल रमज़ान का महीना ऐन मई-जून में पड़ा है। महीना शुरू होने से पहले मुझे सख़्त कश्मकश थी कि शदीद गर्मियों के मौसम में इस साल का रोज़ा कैसे गुज़रेगा, मगर दस रोज़े इस तरह ख़त्म हो गए कि यह महसूस ही नहीं हुआ कि ज़िंदगी में कोई बहुत ग़ैर-मामूली बात पेश आई है।

आम दिनों में अगर सुबह से शाम तक भूखा रहना हो, तो वह बहुत ही सख़्त मालूम होता है। हत्ता कि नाक़ाबिल-ए-बरदाश्त हो जाता है, मगर यही फ़ाक़े के दिन रोज़े के महीने में इस तरह गुज़र जाते हैं कि महसूस ही नहीं होता कि रोज़े का महीना कब आया और कब चला गया।

रोज़े के बहुत-से दीनी और रूहानी फ़ायदे हैं। उनमें से ग़ालिबन एक फ़ायदा यह है कि रोज़ा दीनी हौसला बढ़ाने का एक सबक़ है। रोज़े के ज़रिये हर साल आदमी को यह तजुर्बा कराया जाता है कि ख़ुदा के रास्ते की मुश्किलों को मुश्किलें न समझो। ख़ुदा के रास्ते का कोई काम बज़ाहिर कितना ही मुश्किल क्यों न हो, अगर तुम ख़ुदा के भरोसे पर उस काम को शुरू कर दो, तो ख़ुदा की मदद तुम्हारे साथ हो जाएगी और वह काम इस तरह पूरा हो जाएगा कि आख़िरकार तुम्हें यह महसूस भी न होगा कि यह कोई मुश्किल काम था।

मेरी ज़िंदगी बेहद सादा है। खाने-पीने के मामले में मेरा कोई शौक़ नहीं। मामूली-से-मामूली चीज़ को भी मैं इस तरह खाता हूँ, जैसे कि वह अल्लाह की कोई बहुत बड़ी नेमत हो, मगर अपनी जिस्मानी कमज़ोरी की वजह से मेरा यह हाल है कि भूख-प्यास मुझे बरदाश्त नहीं होती। चुनाँचे हर साल रोज़े से पहले यह एहसास होने लगता है कि इस साल

का रोज़ा कैसे गुज़रेगा, मगर जब रोज़े का महीना आता है, तो वह कितनी तेज़ी से गुज़र जाता है, जैसे कि पहली तारीख़ के बाद ही उसकी तीस तारीख़ आ गई हो। मैं समझता हूँ कि यह बात ख़ालिस ख़ुदा की मदद से होती है। रोज़े के ज़रिये रोज़ेदार को यह नमूना दिखाया जाता है कि ख़ुदा की मदद हर मुश्किल काम को आसान कर देती है। शर्त सिर्फ़ यह है कि आदमी विशफ़ुल थिंकिंग (wishful thinking) के बजाय मुमकिन अस्बाब इस्तेमाल करके अल्लाह के भरोसे पर अपने काम का आग़ाज़ करे। (डायरी; 20 मई, 1986)

अल्लाह की मदद

क़ुरआन में एक हक़ीक़त को दो मक़ाम पर बयान किया गया है। इनमें से एक आयत यह है—

وَلَيَنْصُرَنَّ اللَّهُ مَنْ يَنْصُرُهُ إِنَّ اللَّهَ لَقَوِيٌّ عَزِيزٌ.

“और अल्लाह ज़रूर उसकी मदद करेगा, जो अल्लाह की मदद करेगा। बेशक अल्लाह ज़बरदस्त है, ज़ोर वाला है।”

(क़ुरआन, 22:40)

दूसरे मक़ाम पर ये अल्फ़ाज़ हैं—

يَاأَيُّهَا الَّذِينَ آمَنُوا إِنْ تَنْصُرُوا اللَّهَ يَنْصُرْكُمْ وَيُثَبِّتْ أَقْدَامَكُمْ.

“ऐ ईमान वालो! अगर तुम अल्लाह की मदद करोगे, तो वह तुम्हारी मदद करेगा और तुम्हारे क़दमों को जमा देगा।”

(क़ुरआन, 47:7)

इस आयत का मतलब आम तौर पर यह लिया गया है कि बातिल के ख़िलाफ़ जिन लोगों ने पैग़ंबर का साथ दिया, सिर्फ़ उनके बारे में ये आयतें हैं, मगर ग़ौर करने से मालूम होता है कि इसका मतलब यह

है कि तारीख़ के बारे में अल्लाह का मंसूबा क्या है, उसे जानो और उसमें अहले-हक़ का साथ दो।

ग़ौर करने से मालूम होता है कि ये दोनों आयतें किसी मख़्सूस दौर के बारे में नहीं हैं, बल्कि अल्लाह तआला का यह मंसूबा पूरी तारीख़ के बारे में है और अहले-हक़ से कहा गया है कि वह तारीख़ के ख़ुदाई मंसूबे को जाने और उन लोगों का साथ दे, जो इस मामले में अल्लाह के मंसूबे को पूरा करने के लिए काम कर रहे हैं।

मसलन एक हदीस में आया है कि मेरे लिए सारी ज़मीन मस्जिद बना दी गई (सहीह मुस्लिम, हदीस नंबर 522)। इस हदीस में एक आलमी मसले का ज़िक्र है यानी अल्लाह का मंसूबा यह था कि क़ुरआन की दावत आलमी सतह पर फैले। यह मंसूबा मुकम्मल तौर पर पीसफुल मंसूबा था, मगर मुसलमानों ने इस मंसूबे को समझा नहीं और जंगी कारवाई में मशग़ूल हो गए। इन आयात या हदीस-ए-रसूल से मुराद मुकम्मल तौर पर पुर-अम्न दावती मंसूबा है। इसका जंग या क़िताल से कोई ताल्लुक़ नहीं है। इस हदीस का मतलब यह है कि सारी ज़मीन अहले-इस्लाम के लिए वर्क प्लेस है। सारी ज़मीन उनके लिए अमल के मैदान की हैसियत रखती है। शर्त सिर्फ़ यह है कि वे मुकम्मल मअनों में पुर-अम्न रहें और इस ख़ुदाई मंसूबे में अपने आपको लगा दें।

पेटेंट का क़ानून

नए ज़माने में एक नया वाक़या वजूद में आया है। वह है ईजाद करने वाले को उसकी ईजाद पर महदूद वक़्त के लिए इस्तेमाल की इजाज़त देना। किसी ईजाद करने वाले को उसके आविष्कार पर कुछ वक़्त के लिए उसी को इस्तेमाल का इख़्तियार (monopoly) होता। इसे क़ानून

की ज़बान में पेटेंट (patent) कहा जाता है। यह इंटेलेक्चुअल प्रॉपर्टी राइट्स (intellectual property rights) की एक क़िस्म है, जो इसके मालिक को क़ानूनी हक़ देता है कि वह अपनी ईजाद-कर्दा चीज़ को दूसरों को महदूद मुद्दत के लिए उसकी इजाज़त के बग़ैर इस्तेमाल करने या फ़रोख़्त करने से रोक दे या इस पर कुछ रॉयल्टी हासिल करे यानी पेटेंट का क़ानून एक तय वक़्त के लिए ईजाद करने वाले को उसकी ईजाद को इस्तेमाल करने के लिए इख़्तियार देता है।

A patent is a temporary Government grant of a monopoly to the inventor in return for complete disclosure about the invention to the Government.

यह एक वक़्ती इजाज़त है, इसलिए कि कोई ईजाद भी एक इंसान की तन्हा कोशिशों का नतीजा नहीं होती है, बल्कि इसमें पचास फ़ीसद से ज़्यादा ब-राह-ए-रास्त (direct) या बिल-वास्ता (indirect) मदद क़ुदरत और इंसानों से मिलती है। इसकी रियायत करते हुए इंसान को उसकी ईजाद के लिए महदूद वक़्त का पेटेंट हक़ दिया जाता है। एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका के मुताबिक़, पहला रिकॉर्ड-शुदा पेटेंट 1421 ई. में इटली के मिमार और इंजीनियर फिलिपो ब्रुनेलेस्की (Filippo Brunelleschi, 1377-1446) को दिया गया था।

पेटेंट का क़ानून कायनात की एक फ़ितरी हक़ीक़त की याद-दहानी कराता है। वह है मख़्लूक़ के ऊपर सिर्फ़ उसके ख़ालिक़ के इख़्तियार (monopoly) को क़ुबूल करना। इंसान की ईजाद के बरअक्स ख़ालिक़ की ईजाद में किसी की कोई शिरकत नहीं होती है यानी ख़ालिक़ ने किसी शरीक की मदद के बग़ैर तन्हा अपनी मख़्लूक़ को ईजाद (पैदा) किया है और हर लम्हा वह उसकी तरक़्क़ी के अस्बाब फ़राहम कर रहा है। इसलिए ख़ालिक़ की ईजाद पर ख़ालिक़ का एकाधिकार (monopoly) महदूद मुद्दत के लिए नहीं हो सकता है, बल्कि मख़्लूक़ के ऊपर ख़ालिक़ का एकाधिकार हमेशा है।

ख़ालिक़ ने अपनी तख़्लीक़ का सबूत इंसान के सामने वाज़ेह तौर पर रख दिया है। ये सबूत क़ुरआन के अंदर बयान किए गए हैं। ज़रूरत सिर्फ़ इस बात की है कि इंसान खुले ज़ेहन के साथ इस किताब का मुताला करे और समझने की कोशिश करे। इससे यह हक़ीक़त इंसान के सामने खुल जाएगी कि उसका ख़ालिक़ उससे क्या चाहता है और ऐसा करने की सूरत में इंसान को क्या फ़ायदा हासिल होगा।

जिस तरह दुनियावी रिवाज के मुताबिक़ एक इंसान अपनी ईजाद पर रॉयल्टी (royalty) का हक़दार होता है, उसी तरह अल्लाह रब्बुल आलमीन भी इस बात का मुस्तहिक़ है कि उसकी ख़ल्क़ और ईजाद पर उसे रॉयल्टी अदा की जाए। हर औरत और मर्द अपनी ज़ात और दुनिया में मौजूद जिन चीज़ों से भी वह फ़ायदा उठाता है, उसकी रॉयल्टी वह ख़ालिक़ को अदा करे।

A royalty is a legally binding payment made to an individual or company for the ongoing use of their assets, including copyrighted works, franchises, and natural resources.

वह रॉयल्टी है— अल्लाह की इबादत और उसके लिए सरेंडर। यह एक इंसान के लिए फ़ितरी बाइंडिंग है। क़ुरआन में इरशाद हुआ है—

> "ऐ लोगो! अपने रब की इबादत करो, जिसने तुमको पैदा किया और उन लोगों को भी, जो तुमसे पहले गुज़र चुके हैं, ताकि तुम दोज़ख़ से बच जाओ। वह ज़ात, जिसने ज़मीन को तुम्हारे लिए बिछौना बनाया और आसमान को छत बनाया और उतारा आसमान से पानी और उससे पैदा किए फल, तुम्हारी ग़िज़ा के लिए। पस तुम किसी को अल्लाह के बराबर न ठहराओ, हालाँकि तुम जानते हो।" (क़ुरआन, 2:21-22)

अगर कायनात पर ग़ौर किया जाए तो मालूम होता है कि इंसान के सिवा तमाम मख़्लूक़ात ख़ालिक़ के आगे फ़ितरत (instinct) के तहत अपने आपको सरेंडर किए हुए हैं। सिर्फ़ इंसान ऐसी मख़्लूक़ है, जिसमें से सिर्फ़ कुछ लोग ख़ालिक़ के आगे मुकम्मल तौर पर सरेंडर किए हुए हैं और कुछ लोग सरेंडर नहीं किए हुए हैं (अल-हज, 22:18)। ऐसा इसलिए है कि मंसूबा-ए-तख़्लीक़ (Creation plan of God) के तहत रब्बुल आलमीन ने इंसान को अपने आगे झुकने के मामले में आज़ादी दे रखी है और उसकी यह मर्ज़ी है कि इंसान अपने आज़ादाना इरादे के तहत अपने ख़ालिक़ यानी रब्बुल आलमीन के आगे झुक जाए और वह अपने शऊरी इरादे के तहत उसे अपना रब तस्लीम कर ले और बतौर टोकन ख़ालिक़ को अपनी तरफ़ से कुछ रॉयल्टी अदा करे। जो लोग ऐसा करेंगे, उनके लिए ख़ुदा ने अपनी रहमत से एक अबदी इनाम तैयार कर रखा है यानी अबदी जन्नत में सच्चाई की सीट का परवाना अता करना।

डॉक्टर फ़रीदा ख़ानम

तवाज़ो की सिफ़त

तवाज़ो (modesty) एक अहम ईमानी सिफ़त है। ईमान यह है कि आदमी ख़ुद-पसंदी न करे, क्योंकि ख़ुद-पसंदी ख़ुदा के बजाय अपने आपको बड़ाई का मक़ाम देना है। इसके बजाय वह ख़ुदा-परस्ती, तवाज़ो वग़ैरह को अपनी आदत बनाए। ऐसा करना साबित करता है कि आदमी अपने ईमान में संजीदा है और ऐसा न करना ज़ाहिर करता है कि वह अपने ईमान में संजीदा नहीं।

अमली तौर पर भी इस्लाम तवाज़ो की तालीम देता है, मसलन— नमाज़ इस्लाम का एक रुक्न है। नमाज़ में जो कलिमा सबसे ज़्यादा

दोहराया जाता है, वह है— अल्लाहु अकबर। अज़ान और नमाज़ दोनों को मिलाकर रोज़ाना तक़रीबन तीन सौ बार यह कलिमा दोहराया जाता है। ‘अल्लाहु अकबर’ (अल्लाह बड़ा है) का दूसरा मतलब यह है कि मैं बड़ा नहीं हूँ। इस तरह नमाज़ इंसान को तवाज़ो (modesty) के लिए तैयार करती है और बिला-शुब्हा तवाज़ो मौजूदा दुनिया में सबसे ज़्यादा क़ाबिल-ए-क़द्र इंसानी सिफ़त है। फ़र्ज़ नमाज़ें मस्जिद में बा-जमात पढ़ी जाती हैं। बा-जमात नमाज़ में यह होता है कि एक शख़्स को बतौर इमाम आगे खड़ा करके सब लोग उसके पीछे सफ़ बाँधकर खड़े हो जाते हैं। इस तरह नमाज़ यह सबक़ देती है कि एक इंसान को आगे करके सब लोग पीछे की सीट (back seat) पर चले जाएँ। यह तरीक़ा बिला-शुब्हा तवाज़ो का सबसे बड़ा ज़रिया है। नमाज़ का ख़ात्मा ‘अस्सलामु अलैकुम व रहमतुल्लाह’ पर होता है यानी तमाम इंसानों के लिए अमन की स्पिरिट लेकर मस्जिद के बाहर जाना। गोया कि नमाज़ एक तरफ़ तवाज़ो की सिफ़त पैदा करती है और दूसरी तरफ़ अमन-पसंदी की सिफ़त। यह सिर्फ़ नमाज़ का मामला नहीं है, बल्कि इस्लाम अपने मानने वालों को ज़िंदगी के हर मोड़ पर तवाज़ो इख़्तियार करने की तालीम देता है।

तवाज़ो की सिफ़त बिला-शुब्हा मौजूदा दुनिया में बेहतर समाज बनाने का सबसे ज़्यादा असरदार ज़रिया है। ज़मीन के ऊपर शुक्र, सब्र, तवाज़ो और क़नाअत के साथ रहना ज़मीन की इस्लाह है। इसके बरअक्स नाशुक्री, बेसब्री, घमंड और हिर्स के साथ रहना ज़मीन में फ़साद बरपा करना है, क्योंकि इससे ख़ुदा का क़ायम किया हुआ फ़ितरी निज़ाम टूटता है। यह अल्लाह की क़ायम-कर्दा हुदूद से निकल जाना है। जबकि अल्लाह चाहता है कि हर औरत और हर मर्द उसकी तय की हुई हुदूद के अंदर रहकर ज़िंदगी गुज़ारे।

सवाल की कसरत

सहाबी-ए-रसूल वाबिसा बिन माबिद अल-असदी का एक वाक़्या हदीस की किताबों में आया है। वे पैग़ंबर-ए-इस्लाम सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम के पास आए। वे आपसे नेकी और बदी के तमाम सवालात पूछना चाहते थे। रसूलुल्लाह ने उनके सवालों का जवाब नहीं दिया, बल्कि यह कहा—

> "अपने दिल से फ़तवा पूछो और अपने आपसे फ़तवा पूछो (यह बात आपने तीन बार कही, इसके बाद कहा)— नेकी वह है, जिस पर तुम्हारा दिल मुतमइन हो और बदी वह है, जो तुम्हारे दिल में खटके और तुम्हारे दिल में अंदेशा पैदा हो, ख़्वाह लोग इसके बारे में तुम्हें कोई भी फ़तवा दें।"

(मुसनद अहमद, हदीस नंबर 18006)

यह सिर्फ़ एक सहाबी का वाक़्या नहीं है, बल्कि इसमें तमाम अहले-ईमान के लिए रहनुमाई है। रसूलुल्लाह ने सवाल का जवाब क्यों नहीं दिया? क्योंकि बहुत ज़्यादा सवाल आदमी को डिस्ट्रेक्शन की तरफ़ ले जाता है। हदीस से मालूम होता है कि रसूलुल्लाह ने उनके किसी सवाल का जवाब नहीं दिया। इसके बजाय उन्हें तदब्बुर और तफ़क्कुर पर उभारा। ताहम इसका मतलब यह नहीं है कि हर आदमी हर मामले में अपना मुफ़्ती ख़ुद बन जाए, बल्कि इसका मतलब यह है कि हर मसले को शरई मसला न बनाओ। खुली ममनूआत (prohibited) के सिवा जो चीज़ें हैं, उनपर कॉमन सेंस (common sense) से अमल करो।

सवाल यह है कि कन्फ़्यूज़न किसी को क्यों होता है? मेरे नज़दीक इसका सबब यह है कि लोगों का दिमाग़ ज़्यादातर मालूमात का

जंगल होता है। वे ऐसा नहीं कर पाते कि जाँच-पड़ताल और ताज्ज़िया (analysis) करके मुख़्तलिफ़ मालूमात से दुरुस्त नतीजा निकाल सकें यानी वे मुताल्लिक़ और ग़ैर-मुताल्लिक़ का फ़र्क़ समझें। वे बुनियादी और ग़ैर-बुनियादी में तमीज़ कर सकें और फिर मुख़्तलिफ़ मालूमात को हज़्म करके सही नतीजा निकालें। इसी नाकामी की बिना पर ऐसा होता है कि लोगों का मालूमाती ज़ख़ीरा उन्हें सिर्फ़ कन्फ़्यूज़न तक पहुँचाता है, वह उन्हें फ़िक्री पुख़्तगी अता नहीं करता।

इस्लाम में सवाल से ज़्यादा तदब्बुर और तफ़क्कुर पर ज़ोर दिया गया है। हज़रत ख़िज़्र के साथ पैग़ंबर मूसा जब सफ़र पर रवाना हुए, तो हज़रत ख़िज़्र ने उनसे कहा—

فَلَا تَسْأَلْنِي عَنْ شَيْءٍ.

"तुम मुझसे किसी चीज़ के बारे में सवाल न करना।" (क़ुरआन, 18:70)

इसका मतलब यह नहीं है कि सवाल न करो, बल्कि इसका मतलब यह है कि ज़ेहन में कोई सवाल आए, तो पहले ग़ौर-ओ-फ़िक्र करो। ग़ौर-ओ-फ़िक्र करके आदमी पहले अपने आपको ज़ेहनी एतिबार से तैयार करता है। सवाल का जवाब वही शख़्स दुरुस्त तौर पर समझता है, जो पहले से अपने आपको एक तैयार ज़ेहन (prepared mind) बना चुका हो। इस हक़ीक़त को हदीस में इन अल्फ़ाज़ में बयान किया गया है। एक सहाबी कहते हैं—

يَنْهَى عَنْ... كَثْرَةِ السُّؤَالِ.

"रसूलुल्लाह ज़्यादा सवाल करने से मना करते थे।"
(मुसनद अहमद, हदीस नंबर 18232)

सवाल की कसरत से मना करने का मतलब यह नहीं है कि सवाल करना हराम है, बल्कि इसका मतलब यह है कि आदमी पहले ख़ुद सवाल के तक़ाज़े को पूरा करे, उसके बाद वह सवाल करे।

इस मामले में सही तरीक़ा यह है कि दूसरों से सवाल करने से पहले आदमी ख़ुद ग़ौर-ओ-फ़िक्र करे। इस तरह उसे ज़ेहनी इर्तिक़ा (intellectual development) का फ़ायदा हासिल होगा। अल्लाह तआला ने इंसान के ज़ेहन में ग़ैर-मामूली सलाहियत पैदा की है। यह सलाहियत ग़ौर-ओ-फ़िक्र से बढ़ती है। अपने ज़ेहन को तरक़्क़ी देने का सही तरीक़ा यह है कि आदमी मुताला और ग़ौर-ओ-फ़िक्र के ज़रिए अपने ज़ेहन को तैयार करता रहे। वह अपने अंदर ज़्यादा-से-ज़्यादा जज़्ब (grasp) करने की सलाहियत पैदा करे। वह अपने आपको इस क़ाबिल बनाए कि कोई शख़्स उसके सवाल का जवाब दे, तो वह अपनी तरफ़ से उसमें कुछ इज़ाफ़ा कर सके। हक़ीक़ी सवाल करने वाला वही है, जो जवाब को सुनकर उसमें अपनी तरफ़ से इज़ाफ़ा कर सकता हो।

मज़कूरा हदीस का मतलब अगर लफ़्ज़ बदलकर बयान किया जाए, तो वह यह होगा— सवाल क्यों करते हो? अगर तुम्हारे ज़ेहन में कोई सवाल आया है, तो पहले ख़ुद अपने ज़ेहन को इस्तेमाल करके उसका जवाब मालूम करने की कोशिश करो। सवाल को सिर्फ़ सवाल न समझो, बल्कि उसे अपने ज़ेहनी इर्तिक़ा का ज़रिया बनाओ। किसी बात को सुनकर फ़ौरन सवाल करना जाहिलियत की अलामत है। किसी बात को सुनकर पहले ग़ौर-ओ-फ़िक्र करना चाहिए। अगर ग़ौर-ओ-फ़िक्र से वह बात की तह तक न पहुँचे, तो समझना चाहिए कि उसने अपने ज़ेहन को तैयार करने में कमी की है। लिहाज़ा उसे सबसे पहले अपने ज़ेहनी इर्तिक़ा पर मज़ीद तवज्जोह देनी चाहिए।

मुक़दमा

मुताला-ए-हदीस : तरजुमा व तशरीह, मिश्कात अल-मसाबीह

क़ुरआन के बाद इस्लाम की तालीमात को जानने का दूसरा अहम ज़रिया हदीस है। सिहाह-ए-सित्ता और हदीस की जो दूसरी बुनियादी किताबें हैं, वे ज़्यादातर फ़न्नी अंदाज़ में लिखी गई हैं। इनसे फ़ायदा उठाना उन्हीं लोगों के लिए आसान है, जो आलिम हों। इन किताबों से हदीसें चुनकर आम लोगों के लिए बहुत-सी किताबें तैयार की गई हैं। इन्हें 'इंतिख़ाब-ए-हदीस' या 'हदीस के मुंतख़बात' का नाम दिया जा सकता है।

इन मुंतख़ब हदीस की किताबों में ग़ालिबन सबसे ज़्यादा मक़बूलियत मिश्कात अल-मसाबीह को हासिल हुई। आम इस्तेमाल के लिए बिला-शुब्हा यह एक निहायत मौज़ूँ किताब है, इसीलिए हमने मिश्कात अल-मसाबीह को ज़ेर-ए-नज़र किताब के लिए बतौर बुनियाद इख़्तियार किया है।

मशहूर मुफ़स्सिर और मुहद्दिस अबू मुहम्मद अल-हुसैन बिन मसूद अल-फ़र्राऊ अल-बग़वी (वफ़ात : 516 हिजरी) ने मुंतख़ब अहादीस पर मुश्तमिल एक किताब तैयार की थी, जिसका नाम उन्होंने 'मसाबीहुस्सुन्ना' रखा। यह किताब बाक़ी के मुक़ाबले में छोटी थी और इसमें बाज़ दूसरी फ़न्नी कमियाँ मौजूद थीं, मसलन— इसमें अहादीस की तख़रीज नहीं की गई थी। मिश्कात अल-मसाबीह नामी किताब अल-बग़वी की किताब 'मसाबीहुस्सुन्ना' का इज़ाफ़ा-शुदा एडिशन है। मौजूदा मिश्कात अल-मसाबीह में अल-बग़वी की किताब के मुक़ाबले में 1511 हदीसें ज़्यादा हैं।

साहिब-ए-मिश्कात का पूरा नाम वलीउद्दीन, अबू अब्दुल्लाह, मुहम्मद बिन अब्दुल्लाह अल-ख़तीब अल-उमरी तबरज़ी है। उन्होंने

अल-बग़वी की किताब 'मसाबीहुस्सुन्ना' में इज़ाफ़ा और तहक़ीक़-ओ-तख़रीज का काम किया। इस बुनियाद पर यह किताब बहुत ज़्यादा मक़बूल हुई। मिश्कात अल-मसाबीह के मुअल्लिफ़ का साल-ए-विलादत मुतय्यन तौर पर मालूम नहीं है। उन्होंने अपनी किताब की तकमील पर उसके आख़िर में 737 हिजरी तहरीर किया था। इससे समझा जाता है कि 737 हिजरी के बाद किसी क़रीबी साल में उनकी वफ़ात हुई। तारीख़-ए-हदीस में है कि आपने ग़ालिबन 740 हिजरी में वफ़ात पाई (सफ़्हा नंबर 111)।

मिश्कात अल-मसाबीह की शरह व तरतीब पर बहुत-से उलमा ने काम किया है। आख़िर में दौर-ए-जदीद के मशहूर मुहद्दिस मुहम्मद नासिरुद्दीन अल्बानी (वफ़ात : 1999) ने एक अहम काम अंजाम दिया। उन्होंने अपने बाज़ रफ़ीक़ों की मदद से मिश्कात अल-मसाबीह को नए सिरे से तहक़ीक़ और एडिट किया। इस पर ज़रूरी हाशिए (footnote) लिखे। इसी के साथ उन्होंने मिश्कात अल-मसाबीह में वारिद तमाम हदीसों के सिलसिलेवार नंबर क़ायम किए। इसके मुताबिक़ इस किताब में हदीसों की कुल तादाद 6285 है।

ज़ेर-ए-नज़र किताब 'मुताला-ए-हदीस' में हमने मिश्कात अल-मसाबीह की मुंतख़ब हदीसों को लिया है और ज़ेरे-तशरीह हदीस के ऊपर उसका वह नंबर दर्ज किया जा रहा है, जो शेख़ नासिरुद्दीन अल्बानी के नुस्ख़े में मौजूद है। इस तरह जो शख़्स किसी हदीस को असल किताब में देखना चाहे, वह नंबर की मदद से फ़ौरन इसमें उसे देख सकता है। हमारे सामने मिश्कात अल-मसाबीह के इस एडिशन का वह नुस्ख़ा है, जो 1985 (1405 हिजरी) में अल-मक्तबुल इस्लामी (बेरूत) से तीन जिल्दों में छपा है।

हर हदीस के साथ उसकी शरह भी दर्ज की जा रही है। ताहम यह

शरह आसान उस्लूब और ग़ैर-फ़न्नी अंदाज़ में है। हमारी शरह का मक़सद सिर्फ़ यह है कि हदीस को आम इंसानों के लिए क़ाबिल-ए-फ़हम बनाया जाए और इसके नसीहत वाले पहलू को नुमायाँ किया जाए।

मौलाना अनवर शाह कश्मीरी ने अपनी किताब 'मुशकिलात-उल-क़ुरआन' में कहा है कि हदीस की ख़िदमत का हक़ हाफ़िज़ इब्न हजर अल-असक़लानी ने 'फ़तहुल बारी' लिखकर अदा कर दिया है (माहनामा अल-फ़ुरक़ान; अप्रैल, 2004, सफ़्हा 9)। आम तौर पर उलमा का यह ख़्याल है कि 'फ़तहुल बारी' हदीस की शरह के मौज़ू पर एक मुकम्मल किताब है, लेकिन यह बात पूरी तरह सच नहीं है। जहाँ तक हदीस की फ़न्नी तशरीह का ताल्लुक़ है, बिला-शुब्हा सहीह अल-बुख़ारी की शरह 'फ़तहुल बारी' को एक मुकम्मल किताब कहा जा सकता है, जो तेरह जिल्दों पर मुश्तमिल है, मगर हदीस की तशरीह का एक और पहलू है। इसे हदीस की हकीमाना तशरीह कहा जा सकता है। इस दूसरे पहलू से ज़ख़ीरा-ए-अहादीस की तशरीह का काम अभी तक बाक़ी है। ज़ेर-ए-नज़र किताब में इल्म-ए-हदीस की इस कमी को सादा और मुख़्तसर अंदाज़ में पूरा करने की कोशिश की गई है।

मुताला-ए-हदीस की तरतीब का यह काम अल्लाह की तौफ़ीक़ से 28 मार्च, 2000 को शुरू किया गया था। अल्लाह तआला से दुआ है कि वह इस मज्मूए को लोगों के लिए मुफ़ीद बनाए और हदीस-ए-रसूल से ताल्लुक़ में मददगार साबित हो।

नई दिल्ली

मौलाना वहीदुद्दीन

मुताला-ए-हदीस

शरह मिश्कात अल-मसाबीह

(हदीस नंबर 110-123)

मतर बिन उकाम रज़ियल्लाहु अन्हु कहते हैं कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया—

> “जब अल्लाह किसी बंदे के लिए फ़ैसला करता है कि फ़लाँ मक़ाम पर उसकी मौत होगी, तो उस मक़ाम पर वह उसके लिए कोई ज़रूरत रख देता है।”
> (मुसनद अहमद, हदीस नंबर 21983; सुनन अल-तिर्मिज़ी, हदीस 2146)

तशरीह : ख़ुदा अपनी मस्लहतों के तहत हर मर्द और औरत के लिए यह फ़ैसला फ़रमाता है कि उसे कितने दिन तक मौजूदा दुनिया में रहना है और किस मक़ाम पर उसकी वफ़ात होने वाली है। जब किसी का वक़्त आता है, तो उसके लिए ऐसे हालात पैदा होते हैं कि वह ज़मीन के उसी मक़ाम पर पहुँच जाए, जहाँ उसकी मौत मुक़द्दर थी।

इससे यह मालूम होता है कि इस दुनिया को ख़ालिक़ ने एक मक़सद के तहत पैदा किया है और वह हर लम्हा इसकी निगरानी कर रहा है। इंसान के लिए ज़रूरी है कि वह ख़ालिक़ के इस मंसूबा-ए-तख़्लीक़ को जाने और ज़िंदगी की मंसूबाबंदी (planning) में आख़िरी हद तक इसकी रिआयत करे, जिस तरह वह दुनिया के सफ़र में मंसूबाबंदी का एहतिमाम करता है। वह अपने आपको हर तरह ग़फ़लत का शिकार होने से बचाए— जन्नत किसी इंसान को उसी अमल की बुनियाद पर मिलेगी, जो ख़ालिक़ के मंसूबा-ए-तख़्लीक़ के मुताबिक़ हो, न कि किसी ख़ुद-साख़्ता अमल या ख़ुशफ़हमियों की बुनियाद पर।

आइशा रज़ियल्लाहु अन्हा कहती हैं—

“ऐ ख़ुदा के रसूल! मोमिनों की औलाद का क्या हुक्म है? आपने फ़रमाया कि वे अपने बापों के ताबे हैं। मैंने कहा कि ऐ ख़ुदा के रसूल! क्या किसी अमल के बग़ैर? आपने फ़रमाया कि अल्लाह ख़ूब जानता है, जो वे करने वाले थे। फिर मैंने कहा कि मुशरिकीन की औलाद का क्या हुक्म है? आपने फ़रमाया कि वे अपने बापों के ताबे हैं। मैंने कहा कि क्या किसी अमल के बग़ैर? आपने फ़रमाया कि अल्लाह ख़ूब जानता है, जो वे करने वाले थे।”

(सुनन अबू दाऊद, हदीस नंबर 4712)

तशरीह : इस हदीस में मज़कूरा मसले का उमूमी हुक्म बताया गया है। नाबालिग़ बच्चों के बारे में दुरुस्त बात वह है, जो इब्न अब्द अल-बर्र ने हज़रत आइशा रज़ियल्लाहु अन्हा के हवाले से बयान की है। हज़रत आइशा के मुताबिक, हज़रत ख़दीजा ने मुशरिकीन की औलाद के ताल्लुक़ से पूछा, तो आपने कहा कि वे अपने वालिदैन के साथ होंगे। फिर इसके बाद उनसे पूछा गया, तो आपने कहा कि अल्लाह तआला ख़ूब जानता है कि वे क्या करने वाले थे। फिर इसके बाद पूछा गया, तो यह आयत नाज़िल हुई—

وَلَا تَزِرُ وَازِرَةٌ وِزْرَ أُخْرَى.

“और कोई बोझ उठाने वाला दूसरे का बोझ न उठाएगा।”

(क़ुरआन, 6:164)

चुनाँचे आपने कहा कि वे फ़ितरत पर हैं, तो वे जन्नत में होंगे (هُمْ عَلَى الْفِطْرَةِ وَهُمْ فِي الْجَنَّةِ)।

(अल-इस्तिजकार, इब्न अब्द अल-बर, जिल्द 3, सफ़्हा 113)

एक और हदीस में है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने ख़्वाब में हज़रत इब्राहीम अलैहिस्सलाम को जन्नत में देखा, तो आपने देखा कि उनके इर्द-गिर्द बहुत बड़ी तादाद में छोटे-छोटे बच्चे मौजूद हैं। उनके बारे में आपने कहा—

وَأَمَّا الوِلْدَانُ الَّذِينَ حَوْلَهُ فَكُلُّ مَوْلُودٍ مَاتَ عَلَى الفِطْرَةِ،
قَالَ: فَقَالَ بَعْضُ المُسْلِمِينَ:يَا رَسُولَ اللهِ، وَأَوْلاَدُ المُشْرِكِينَ؟
فَقَالَ رَسُولُ اللهِ صَلَّى اللهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ:وَأَوْلاَدُ المُشْرِكِينَ.

यानी ये वे बच्चे हैं, जिनका इंतिक़ाल फ़ितरत पर हुआ है, तो कुछ मुसलमानों ने कहा—

“ऐ अल्लाह के रसूल! मुशरिकीन की औलाद भी उनमें हैं। आपने कहा कि हाँ, मुशरिकीन की औलाद भी।”
(सहीह अल-बुख़ारी, हदीस 1386; सहीह मुस्लिम, हदीस नंबर 2275)

इमाम अल-नववी ने कहा है कि दुनिया में मुशरिकीन और मुंकिरीन की औलाद का हुक्म वही है, जो उनके वालिदैन का हुक्म है (إِنَّ أَوْلَادَ الْكُفَّارِ حُكْمُهُمْ فِي الدُّنْيَا حُكْمُ آبَائِهِمْ), लेकिन आख़िरत के बारे में सही बात यह है कि अगर वे बालिग़ होने से पहले इंतिक़ाल कर जाएँ, तो जन्नत में होंगे। (शरह सहीह मुस्लिम, जिल्द 12, सफ़्हा 50)

अब्दुल्लाह बिन मसूद रज़ियल्लाहु अन्हु कहते हैं कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया—

“ज़िंदा गाड़ने वाली और ज़िंदा गाड़ी हुई दोज़ख़ में हैं।”
(सुनन अबू दाऊद, हदीस नंबर 4717)

तशरीह : इस हदीस की वज़ाहत क़ुरआन की दो आयतों को मिलाकर पढ़ने से समझ में आती है। वह आयत यह है—

وَإِذَا الْمَوءُودَةُ سُئِلَتْ۔ بِأَيِّ ذَنْبٍ قُتِلَتْ.

> “जब ज़िंदा गाड़ी हुई लड़की से पूछा जाएगा कि वह किस क़सूर में मारी गई।” (क़ुरआन, 81:8-9)

इस्लाम का एक बुनियादी उसूल यह है कि एक शख़्स के अमल की सज़ा दूसरे शख़्स को नहीं दी जा सकती। अल्लाह तआला किसी का फ़ैसला उसके ज़ाती अमल की बुनियाद पर करेगा। इसलिए बज़ाहिर यह नाक़ाबिल-ए-क़ियास है कि गाड़ी जाने वाली बे-क़सूर बच्ची को गाड़ने वाले (ख़्वाह मर्द या औरत) के जुर्म में शामिल किया जाए। ग़ालिबन यहाँ कलाम का रुख़ गाड़ने वाले की तरफ़ है, मगर बात की संजीदगी को समझने के लिए हदीस में यह अंदाज़ इख़्तियार किया गया है।

अबू अल-दरदा रज़ियल्लाहु अन्हु कहते हैं कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया—

> “अल्लाह अपनी मख़्लूक़ में हर बंदे के मुताल्लिक़ पाँच चीज़ों से फ़ारिग़ हो चुका है— उसकी मौत से, उसके अमल से, उसके ठिकाने से, उसके निशान-ए-क़दम से और उसके रिज़्क़ से।”
> (मुसनद अहमद, हदीस नंबर 21722)

तशरीह : इस हदीस में जिन पाँच चीज़ों का ज़िक्र है, उनका ताल्लुक़ दरअसल उन इम्तिहानी पर्चों से है, जिनमें हर आदमी का इम्तिहान लिया जाना मुक़द्दर है। आदमी को चाहिए कि वह इस बहस में न पड़े कि उसे कौन-सा पर्चा मिला और कौन-सा नहीं मिला। उसे चाहिए कि वह अपना पूरा ध्यान सिर्फ़ इस पहलू पर लगाए कि जो

इम्तिहानी पर्चे उसके लिए मुक़द्दर किए गए हैं, उन्हें वह कामयाबी के साथ हल कर सके। इस दुनिया में कामयाबी का राज़ यह नहीं है कि आदमी माद्दी साज़-ओ-सामान अपने गिर्द इकट्ठा कर ले। यहाँ कामयाबी का राज़ यह है कि आदमी को इम्तिहान का जो पर्चा दिया गया है, उस पर्चे को हल करने में वह कामयाब हो जाए। 'निशान-ए-क़दम' यानी दुनिया में किस-किस जगह इंसान अपना क़दम' रखेगा।

आइशा रज़ियल्लाहु अन्हा कहती हैं कि मैंने रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम को यह कहते हुए सुना—

> "जो आदमी तक़दीर के मामले में किसी चीज़ पर बहस करेगा, उसके बारे में क़यामत के दिन पूछा जाएगा और जो तक़दीर के मामले में बहस नहीं करेगा, उससे इसकी बाबत सवाल नहीं होगा।" (सुनन इब्न माजा, हदीस नंबर 83)

तशरीह : इंसान अपनी महदूदियत (limitations) की बिना पर तक़दीर के मामले में पक्की राय नहीं क़ायम कर सकता। ऐसी हालत में जो आदमी ख़ौज़ से बचे और इजमाली इल्म पर क़नाअत करे, तो वह आख़िरत की पकड़ से बच गया और जो आदमी ख़ौज़ और बहस करके आख़िरी राय तक पहुँचना चाहे, वह दुनिया में ज़ेहनी परेशानी में मुब्तला होगा और आख़िरत में इस जुर्म में पकड़ा जाएगा कि उसने अपनी फ़ितरी महदूदियत का एतिराफ़ नहीं किया और बे-फ़ायदा तौर पर ऐसी बहसों में पड़ा, जिनका जवाब मालूम करना उसके लिए मुमकिन ही न था।

इब्न अद-दैलमी (ताबई) कहते हैं कि मैं उबई इब्न क़ाब के पास गया। मैंने उनसे कहा कि मेरे दिल में तक़दीर के बारे में कुछ शक पैदा हो गया है। पस आप मुझे कोई बात बताएँ। शायद अल्लाह इसे मेरे

दिल से निकाल दे। उन्होंने कहा कि अगर अल्लाह तआला अपने आसमान के लोगों को और अपनी ज़मीन के लोगों को अज़ाब दे, तो वह इस अज़ाब पर उनके हक़ में ज़ालिम नहीं होगा और अगर वह उन पर रहम फ़रमा दे, तो उसकी रहमत यक़ीनन उनके आमाल से बेहतर है और अगर तुम उहद पहाड़ के बराबर सोना सदक़ा करो, तो अल्लाह तुमसे उस सदक़े को क़ुबूल नहीं करेगा, यहाँ तक कि तुम तक़दीर पर ईमान लाओ और तुम यह जानो कि जो तुम्हें पहुँचा, वह तुमसे रुक नहीं सकता था और जो तुमसे रुक गया, वह तुम्हें पहुँच नहीं सकता था और अगर तुम इसके सिवा किसी और चीज़ पर मरोगे, तो दोज़ख़ में जाओगे। वे कहते हैं कि फिर मैं अब्दुल्लाह बिन मसूद के पास गया, तो उन्होंने भी ऐसी ही बात कही। फिर हुज़ैफ़ा बिन अल-यमान के पास गया, तो उन्होंने भी ऐसा ही कहा। फिर मैं ज़ैद बिन साबित के पास गया, तो उन्होंने भी रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम से इस क़िस्म की हदीस बयान की।

(मुसनद अहमद, हदीस नंबर 21589; सुनन अबू दाऊद हदीस नंबर 4699; सुनन इब्न माजा, हदीस नंबर 77)

तशरीह : इस हदीस में जो बात कही गई है, वह बंदों की निस्बत से है। बंदों को चाहिए कि वे इस हक़ीक़त का मुकम्मल एतिराफ़ करें कि उनका रब क़ादिर-ए-मुत्लक़ है। इंसान को उसके रब की तरफ़ से इतनी ज़्यादा नेमतें मिली हुई हैं कि उनका शुमार मुमकिन नहीं। उसका हक़ बंदों के ऊपर इतना ज़्यादा है कि वह बंदों के साथ जो मामला भी करे, वह उसकी तरफ़ से ज़ुल्म नहीं होगा। ऐसा अक़ीदा अल्लाह पर ईमान की बुनियादी शर्त है। ताहम जहाँ तक ख़ुदा का ताल्लुक़ है, उसकी शान-ए-कमाल का यह भी एक पहलू है कि उसने यह फ़ैसला किया है कि उसकी रहमत उसके ग़ज़ब के ऊपर ग़ालिब रहेगी (7:156)। इसलिए अगर किसी ने ग़लत अमल न किया हो, तो वह उसे नाहक़ नहीं पकड़ेगा।

नाफ़े ताबई कहते हैं कि एक आदमी अब्दुल्लाह बिन उमर के पास आया। फिर उसने कहा कि फ़लाँ शख़्स ने आपको सलाम किया है। उन्होंने कहा कि मुझे यह बात पहुँची है कि उसने दीन में नई बात निकाली है। पस अगर उसने दीन में नई बात निकाली है, तो मेरी तरफ़ से उसे सलाम न पहुँचाना, क्योंकि मैंने रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम को यह कहते हुए सुना है कि मेरी उम्मत में या यह कि इस उम्मत में ख़स्फ़ (धँस जाना), मस्ख़ (चेहरा बिगड़ जाना) और क़ज़्फ़ (पत्थर बरसना) होगा, तो वह अहले-क़दर (क़दर करने वाले) पर होगा। (सुनन अल-तिर्मिज़ी, हदीस नंबर 1252; सुनन अबू दाऊद, हदीस नंबर 4613; सुनन इब्न माजा हदीस नंबर 4061)

तशरीह : मज़कूरा सहाबी ने जो बात कही, इसका मतलब यह नहीं है कि ऐसे लोगों से सलाम व कलाम न किया जाए। सहाबी का क़ौल हैमरिंग (hammering) के अंदाज़ में इज़हार-ए-बेज़ारी के लिए है, न कि सलाम का मसला बताने के लिए। तक़दीर के मामले में मुजमल ईमान का हुक्म दिया गया है। जो शख़्स इस मामले में मुख़्तसर इल्म पर न रुके, बल्कि इस मामले में मुकम्मल इल्म तक पहुँचने के लिए ग़ैर-ज़रूरी बहस और मुबाहिसे में पड़े, वह न सिर्फ़ लोगों के दरमियान कन्फ़्यूज़न फैलाने का जुर्म कर रहा है, बल्कि वह बिदअत का फ़ेअल भी कर रहा है और बिदअत इस्लाम में बहुत बड़ा जुर्म है।

अबू हुरैरा रज़ियल्लाहु अन्हु कहते हैं कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया—

> “जब अल्लाह ने आदम को पैदा किया, तो उसने उनकी पुश्त पर हाथ फेरा। फिर उनकी पुश्त से उन्होंने तमाम जानों को बाहर निकाल दिया, जिन्हें अल्लाह ने उनकी नस्ल से क़यामत तक

पैदा करने वाला था। फिर अल्लाह ने उनमें से हर इंसान की दोनों आँखों के दरमियान एक चमक रखी। फिर इन सबको आदम के सामने पेश किया। उन्होंने कहा कि ऐ मेरे रब! ये कौन लोग हैं? फ़रमाया कि तुम्हारी औलाद। आदम ने उनमें से एक को देखा, तो उसकी दोनों आँखों के दरमियान की चमक उनको बहुत अच्छी लगी। उन्होंने कहा कि मेरे रब! यह कौन है? फ़रमाया कि दाऊद। उन्होंने कहा कि ऐ मेरे रब! तूने इसकी उम्र कितनी रखी है? फ़रमाया कि साठ साल। उन्होंने कहा कि मेरी उम्र से 40 साल लेकर उसकी उम्र में इज़ाफ़ा कर दे। रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने कहा कि जब आदम की उम्र में 40 साल रह गए, तो मौत का फ़रिश्ता उनके पास आया। आदम ने कहा कि क्या मेरी उम्र पूरी होने में 40 साल बाक़ी नहीं हैं? फ़रिश्ते ने कहा कि क्या आपने अपनी उम्र के 40 साल अपने बेटे दाऊद को नहीं दिए थे? लेकिन आदम ने इनकार किया, तो उनकी औलाद भी इनकार करती है। आदम भूल गए, तो उनकी औलाद भी भूलती है। आदम ने ख़ता की, तो उनकी औलाद भी ख़ता करती है।” (सुनन अल-तिर्मिज़ी, हदीस नंबर 3076)

तशरीह : इस हदीस में जिस वाक़ये का ज़िक्र है, उसका ताल्लुक़ बज़ाहिर ग़ैबी मामले से है, लेकिन इस वाक़ये के रेफ़रेंस में इंसान की फ़ितरी कमज़ोरियों को बयान किया गया है, मसलन— भूलना, ग़लती करना वग़ैरह। इंसान इन फ़ितरी कमज़ोरियों पर क़ाबू नहीं पा सकता है, लेकिन इसी के साथ अल्लाह तआला ने उसके लिए यह दरवाज़ा भी खोल दिया है कि जब भी उससे कोई ग़लती या भूल-चूक हो जाए और उसे इसका एहसास हो जाए, तो वह तौबा और नदामत का तरीक़ा इख़्तियार करे, जैसा कि उसके बाप आदम ने किया था (अल-बक़रह, 2:37)। ऐसा हरगिज़ न करे कि ग़लती

करने के बाद अकड़ और सरकशी में पड़ जाए। अकड़ और सरकशी इब्लीस का तरीक़ा है।

ग़ैबी उमूर के बारे में सही मसलक यह है कि उनको जैसा है, वैसा ही मान लिया जाए। इनमें ख़ौज़ (research) और तअम्मुक़ (probe) से परहेज़ किया जाए।

अबू दरदा रज़ियल्लाहु अन्हु कहते हैं कि नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया—

> “अल्लाह ने आदम को पैदा किया और जब उन्हें पैदा कर लिया, तो उसने उनके दाहिने कंधे पर हाथ मारा। इससे सफ़ेद औलाद निकली। ये सब चींटियों की मानिंद थे। फिर उसने उनके बाएँ कंधे पर हाथ मारा और इससे काली औलाद निकली। वे जैसे कि कोयले की तरह थे। फिर दाहिनी ओर वालों के मुताल्लिक़ फ़रमाया कि ये जन्नत की तरफ़ हैं और मुझे परवाह नहीं और बाएँ कंधे वालों के मुताल्लिक़ फ़रमाया कि ये दोज़ख़ की तरफ़ हैं और मुझे परवाह नहीं।”

(मुसनद अहमद, हदीस नंबर 27488)

तशरीह : इस हदीस से मालूम होता है कि इंसानी नस्ल की तख़्लीक़ बा-क़ायदा मंसूबे के तहत हुई है। इंसान को चाहिए कि वह इस मंसूबे को समझे और उसकी तामील करके उस कामयाबी को हासिल कर ले, जो उसके ख़ालिक़ ने उसके लिए मुक़द्दर की है। इस मंसूबा-ए-तख़्लीक़ का मर्कज़ी किरदार इंसान है और तख़्लीक़ की मंज़िल जन्नत (Paradise) है, जो कि इंसान के लिए मेयारी दुनिया (ideal world) है। आग़ाज़ से इख़्तिताम तक यह एक लंबा सफ़र है, जो मुख़्तलिफ़ मरहलों से गुज़रता है और आख़िरकार वह अबदी जन्नत तक पहुँचता है।

ख़ालिक़ ने अपने तख़्लीक़ी नक़्शे के मुताबिक़ इस दुनिया को एक जोड़ा दुनिया (pair world) की शक्ल में बनाया है। एक वह दुनिया, जिसमें हम पैदा होने के बाद रहते हैं और दूसरी वह दुनिया, जहाँ हम मौत के बाद चले जाते हैं। इंसानों को उसके पैदा करने वाले ने एक अबदी मख़्लूक़ की हैसियत से पैदा किया है, मगर उसने उसकी ज़िंदगी को दो मरहलों में तक़सीम कर दिया है— मौत के पहले का दौर और मौत के बाद का दौर। मौत से पहले की दुनिया आज़माइशी मक़ाम (testing ground) के तौर पर बनाई गई है और मौत के बाद की दुनिया को दारुल जज़ा (reward world) के तौर पर।

मौजूदा दुनिया चूँकि टेस्ट के लिए बनाई गई है, इसलिए यहाँ हर औरत और मर्द को आज़ादी हासिल है, मगर यहाँ दुनिया में मौजूद हर चीज़ नाकाफ़ी और महदूद सूरत में है। गोया कि मौजूदा दुनिया एक क़िस्म का एक्ज़ामिनेशन हॉल (examination hall) है। यहाँ टेस्ट देने के ब-क़द्र ज़रूरी सामान मौजूद है। ख़ुशहाल ज़िंदगी गुज़ारने के लिए जो आला चीज़ें दरकार हैं, वे यहाँ मौजूद नहीं। एक्ज़ामिनेशन हॉल के अंदर कोई तालिब-ए-इल्म अपनी मतलूब ज़िंदगी की तामीर करना चाहे, तो उसे सिर्फ़ मायूसी होगी। यही मायूसी उन लोगों को हो रही है, जो मौजूदा टेस्ट की दुनिया में अपने मतलूब मुस्तक़बिल की तामीर करना चाहते हैं। मौत से पहले दुनिया में किसी औरत या मर्द को क्या करना है कि वह मौत के बाद दुनिया में अपनी मतलूब दुनिया (desired world) पा सके? इसका जवाब यह है कि वह अपनी आज़ादी को ख़ालिक़ की मंशा के मुताबिक़ इस्तेमाल करे।

अबू नज़रा ताबई कहते हैं कि असहाब-ए-रसूल में से एक शख़्स, जिनका नाम अबू अब्दुल्लाह था, उनके पास उनके असहाब इयादत

के लिए आए। उस वक़्त वे रो रहे थे। उन्होंने उनसे पूछा कि तुम्हें क्या चीज़ रुला रही है? क्या रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने तुमसे यह नहीं कहा था कि अपनी मूँछें कटवाओ। फिर उसके पाबंद रहो, यहाँ तक कि मुझसे मिल जाओ। उन्होंने कहा कि हाँ, मगर मैंने रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम को यह कहते हुए सुना है कि अल्लाह ने (अपनी मख़्लूक़ में से) एक हिस्से को अपने दाहिने हाथ की मुट्ठी में लिया और (बाक़ी) दूसरे हिस्से को दूसरे हाथ की मुट्ठी में लिया और फ़रमाया कि यह इसके लिए है और यह उसके लिए है और मुझे परवाह नहीं। अबू अब्दुल्लाह सहाबी ने कहा कि और मैं नहीं जानता कि मैं दोनों में से किस मुट्ठी में हूँ।

(मुसनद अहमद, हदीस नंबर 17593)

तशरीह : "यह इसके लिए है और यह उसके लिए है" (هَذِهِ لِهَذِهِ وَهَذِه لِهَذِهِ) का मतलब यह है कि दाईं मुट्ठी वाले जन्नत के लिए हैं और बाईं मुट्ठी वाले जहन्नम के लिए। इस हदीस से मालूम होता है कि सच्चा मोमिन उम्मीद और ख़ौफ़ के दरमियान जीता है। खुली बशारत भी उसकी इस अंदेशानाक हालत को ख़त्म नहीं करती। ईमान अल्लाह की मोहब्बत और ख़ौफ़ का एक ऐसा मक़ाम है, जिसमें आदमी अल्लाह से डरता है, मगर उसी की तरफ़ भागता है, उसी से खौफ़ महसूस करता है, मगर वह उसी से पाने की उम्मीद भी रखता है। यह एक ऐसा इज़्तिराब (तनाव) है, जो सरापा इत्मीनान है और ऐसा इत्मीनान है, जो सरापा बेचैनी है। यही वह नफ़्सियाती हालत है, जो मोमिन के किरदार को ढालती है। अल्लाह रब्बुल आलमीन की मारिफ़त और उसके मंसूबा-ए-तख़्लीक़ की दरयाफ़्त इंसान के अंदर उम्मीद और ख़ौफ़ की एक ऐसी मिली-जुली कैफ़ियत पैदा कर देती है, जिसमें बंदा कभी यह तय नहीं कर पाता कि इन दोनों में से किसे फ़ौक़ियत दे। यह सब

कुछ करके अपने आपको कुछ न समझने का वह आला-तरीन एहसास है, जिसमें आदमी को सिर्फ़ अपनी ज़िम्मेदारियाँ याद रहती हैं और अपने हुक़ूक़ को वे बिलकुल भूल जाते हैं। सहाबी-ए-रसूल अबू अब्दुल्लाह के अलफ़ाज़ इसी हक़ीक़त का इज़हार करते हैं।

अब्दुल्लाह बिन अब्बास रज़ियल्लाहु अन्हु कहते हैं कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया—

> “अल्लाह ने आदम की पुश्त (में मौजूद तमाम औलाद) से नअमान यानी अरफ़ह में अहद लिया। उसने आदम की पीठ से उनकी सारी औलाद निकाली। फिर उन्हें आदम के सामने चींटियों की तरह बिखेर दिया। फिर उनसे रूबरू कलाम किया। फ़रमाया कि क्या मैं तुम्हारा रब नहीं हूँ? उन्होंने कहा कि हाँ, हम गवाह हैं। इरशाद हुआ कि हमने तुम्हारी गवाही इसलिए ले ली, ताकि तुम लोग क़यामत के दिन यह न कहो कि हम इससे ग़ाफ़िल थे या यह कहो कि शिर्क तो हमारे बाप-दादाओं ने किया, हम तो उनकी बाद की नस्ल हैं। क्या तू हमें उस पर हलाक करेगा, जो बातिल-परस्तों ने किया।”

(मुसनद अहमद, हदीस नंबर 2455)

तशरीह : इस हदीस में जिस मामले का ज़िक्र है, उसका मतलब दूसरे लफ़्ज़ों में यह है— इंसान की फ़ितरत में ख़ालिक़ का शऊर पैदाइशी तौर पर रख दिया गया है। अगर बिल-फ़र्ज़ कुछ लोगों तक ख़ुदा के दीन की दावत बराह-ए-रास्त तौर पर नहीं पहुँची, तब भी मज़कूरा मामले की सूरत में वे बिल-वास्ता तौर (indirectly) पर हर एक को पहुँच चुकी है। इसलिए किसी भी व्यक्ति के लिए आख़िरत की पूछताछ से बचना मुमकिन नहीं।

उबई बिन क़ाब रज़ियल्लाहु अन्हु ने क़ुरआन की आयत “और जब तुम्हारे रब ने औलाद-ए-आदम की पुश्त से उनकी ज़ुर्रिय्यत को बाहर निकाला...” (7:172) की तशरीह में कहा कि अल्लाह ने उन्हें जमा किया, फिर उन्हें गिरोह-गिरोह किया। फिर उन्हें सूरत और गोयाई (बोलने की ताक़त) दी। फिर वे बोले। फिर अल्लाह ने उनसे अहद लिया और उन्हें ख़ुद उनके ऊपर गवाह बनाया। अल्लाह ने कहा, “क्या मैं तुम्हारा रब नहीं हूँ?” उन्होंने कहा, “हाँ।” कहा, “मैं तुम्हारे ऊपर सात आसमानों और सात ज़मीनों को और तुम्हारे वालिद आदम को गवाह बनाता हूँ, ताकि तुम क़यामत में यह न कहो कि हमें इसकी ख़बर न थी। जान लो कि मेरे सिवा कोई और माबूद नहीं है और न मेरे सिवा कोई रब है और तुम मेरे साथ किसी चीज़ को शरीक न ठहराना। मैं तुम्हारे पास अपने रसूल भेजूँगा। वे तुम्हें मेरा अहद याद दिलाएँगे और मैं तुम्हारे ऊपर अपनी किताबें उतारूँगा।” उन्होंने कहा कि हम गवाह हैं कि तू हमारा रब है और तू हमारा माबूद है। तेरे सिवा कोई और हमारा रब नहीं। पस उन्होंने इसका इक़रार किया और आदम को उनके ऊपर बुलंद किया गया। उन्होंने उन सबको देखा। चुनाँचे उन्होंने (उनके दरमियान) अमीर और फ़क़ीर और ख़ूबसूरत और बदसूरत देखा, तो आदम ने कहा, “ऐ मेरे रब! तूने अपने बंदों के दरमियान बराबरी क्यों न रखी?” अल्लाह ने कहा कि मैंने यह चाहा कि मेरा शुक्र अदा किया जाए। इसी तरह आदम ने उनके दरमियान पैग़ंबरों को चराग़ों की मानिंद देखा, उन पर नूर था। उनसे दूसरा ख़ुसूसी अहद रिसालत और नबूव्वत के मुताल्लिक़ लिया गया। इस अहद को अल्लाह ने क़ुरआन में इन अलफ़ाज़ में बयान किया है— “और जब हमने पैग़ंबरों से उनका अहद लिया और तुमसे, नूह से, इब्राहीम से, मूसा और ईसा बिन मरियम से...” (33:7)। ईसा भी उन्हीं रूहों में थे, उन्हें मरियम की तरफ़ भेजा। हज़रत उबई बिन क़ाब बयान करते हैं कि ईसा की रूह मरियम के मुँह से उनके जिस्म में दाख़िल हुई थी।

(मुसनद अहमद, हदीस नंबर 21232)

तशरीह : पैग़ंबरों का काम याद-दहानी है। ख़ुदा को जो दीन मतलूब है, उसे पेशगी तौर पर हर इंसान की फ़ितरत में रखा गया है। पैग़ंबर या उनकी पैरोकारी (obedience) में दाई इसीलिए उठते हैं, ताकि लोगों को उनका फ़ितरी सबक़ याद दिलाएँ और उन्हें उस अहद पर क़ायम होने की नसीहत करें, जो उन्होंने पेशगी तौर पर अपने रब से लिया है। इंसान के लिए ज़रूरी है कि वह अपनी फ़ितरत को बुरे असर से बचाए, ताकि वह हक़ की आवाज़ को सुनते ही फ़ौरन पहचान ले और हक़ का साथी बन जाए।

अबू दरदा रज़ियल्लाहु अन्हु कहते हैं कि एक दिन हम रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम के पास बैठे हुए वाक़ेअ होने वाली चीज़ों के बारे में बातचीत कर रहे थे। रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया—

> "अगर तुम सुनो कि कोई पहाड़ अपनी जगह से हट गया है, तो उसे मान लेना, लेकिन अगर तुम यह सुनो कि किसी शख़्स की जिबिल्लत (nature) बदल गई है, तो तुम उसे हरगिज़ न मानना, क्योंकि जो शख़्स जिस जिबिल्लत के साथ पैदा किया गया है, वह उसी की तरफ़ जाएगा।"

(मुसनद अहमद, हदीस नंबर 27499)

तशरीह : असल यह है कि एक इंसान और दूसरे इंसान के दरमियान हमेशा फ़र्क़ (difference) रहता है। कोई भी दो इंसान यकसाँ नहीं हो सकते। ख़ालिक़ ने हर मर्द और हर औरत को मिस्टर डिफरेंट और मिस डिफरेंट के रूप में पैदा किया है। डिफरेंस ख़ुद फ़ितरत का लाज़िमी हिस्सा है और जब दो डिफरेंट लोग बाहम मिलें, तो कामयाब ज़िंदगी की ज़मानत सिर्फ़ यह हो सकती है कि दोनों एक-दूसरे के साथ एडजस्ट

करके ज़िंदगी गुज़ारें। इस मामले में फ़रीक़ैन के लिए एडजस्टमेंट के सिवा कोई और ऑपशन (option) नहीं।

यह एक भिन्नता (diversity) का मामला है और वह एक अज़ीम नेमत है। इसकी वजह से यह मुमकिन होता है कि दो लोगों के दरमियान तबादला-ए-ख़्याल (exchange of ideas) हो और उनके अंदर ज़ेहनी इर्तिक़ा का अमल जारी हो। इख़्तिलाफ़-ए-राय (difference of opinion) पर मबनी तबादला-ए-ख़्याल के फ़ायदे बेशुमार हैं। इसके ज़रिये इंसान को मौक़ा मिलता है कि वे दूसरे के फ़िक्री नतीजे से फ़ायदा उठाएँ। इससे ज़ेर-ए-बहस (under discussion) मसले के नए-नए पहलू सामने आते हैं, इससे इंसान की तख़्लीक़ी फ़िक्र में इज़ाफ़ा होता है। इसलिए सही तरीक़ा यह है कि इंसानी ज़ेहन के फ़ितरी फ़र्क़ को जानकर उसका मुसबत तरीक़े से इस्तेमाल किया जाए, न कि उसे बदलने की कोशिश की जाए। अगर फ़रीक़ैन में मुसबत मिज़ाज हो, तो डिफरेंस से इंटेलेक्चुअल एक्सचेंज पैदा होगा और इस एक्सचेंज से इंटेलेक्चुअल डेवलपमेंट का अमल जारी होगा। यही किसी क़ौम की तरक़्क़ी का सबसे बड़ा राज़ है। इसके बरअक्स किसी समाज या ग्रुप में तनव्वो को ममनूअ (taboo) क़रार देना सिर्फ़ इस क़ीमत पर होता है कि वह समाज या ग्रुप जुमूद (stagnation) का शिकार हो जाए।

उम्म-ए-सलमा रज़ियल्लाहु अन्हा बताती हैं—

> “मैंने कहा कि ऐ अल्लाह के रसूल! आपको हर साल उस ज़हरीली बकरी का असर मालूम होता है, जो आपने खाई थी। फ़रमाया कि मुझे इसके सिवा कुछ नहीं पहुँचता, जो मेरे मुक़द्दर में उस वक़्त लिख दिया गया, जब आदम अपनी मिट्टी में (तैयारी के मरहले में) थे।”

(सुनन अबू दाऊद, हदीस नंबर 3546)

तशरीह : मौजूदा दुनिया इम्तिहान की मस्लहत के तहत चल रही है। यहाँ जो कुछ किसी के साथ पेश आता है, वह उसी मस्लहत के तहत पेश आता है। मिसाल के तौर पर, यहूदी का रसूल-ए-ख़ुदा को ज़हर देना और आपका उस ज़हर को अनजाने में खा लेना ग़ालिबन इसलिए था कि यहूदियों की अख़्लाक़ी हालत को आख़िरी हद तक बरहना (बेपर्दा) किया जाए, ताकि खुले तौर पर यह साबित हो जाए कि उन्हें जो सज़ा दी जा रही है, वे असल में उसके मुस्तहिक़ हैं। इस वाक़ये का ताल्लुक़ यहूदियों को डिसक्रेडिट करने से था, न कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम को मज़कूरा ख़ुराक खिलाने से।

रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम के जवाब में तमाम इंसानों के लिए एक अहम रहनुमाई मौजूद है यानी मनफ़ी सोच से ज़ेहन को कैसे डाइवर्ट (divert) किया जाए। चुनाँचे एक साहब से अना (ego) के मौज़ू पर मेरी गुफ़्तगू हुई। मैंने कहा कि ईगो को ख़त्म करना मुमकिन नहीं। अलबत्ता उसे डिफ़्यूज़ (diffuse) किया जा सकता है। यही इस्लाम का तरीक़ा है। इस्लाम आदमी की सोच के अंदर एक इंक़लाब लाता है। यह सोच इस बात की ज़ामिन बन जाती है कि जब भी आदमी की अना भड़के, तो उसकी रब्बानी सोच मुतहर्रिक होकर उसकी अना के बम को डिफ़्यूज़ कर दे। मैंने कहा कि अना (ego) कोई बुराई नहीं, वह एक ताक़त है। आपको सिर्फ़ यह करना है कि अपने ज़ेहन को इतना ज़्यादा तरक़्क़ी दें कि वह ईगो को सिर्फ़ अच्छे इस्तेमाल में ले, वह उसे बुरे इस्तेमाल तक न जाने दे।

सी०पी०एस० का मिशन

एक हदीस-ए-रसूल मुसनद इमाम अहमद में इन अलफ़ाज़ में नक़ल की गई है—

عَن جَابِرِ بْنِ عَبْدِ اللهِ، قَالَ:سَمِعْتُ رَسُولَ اللهِ صَلَّى اللهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ يَقُولُ:إِنَّ النَّاسَ دَخَلُوا فِي دِينِ اللهِ أَفْوَاجًا، وَسَيَخْرُجُونَ مِنْهُ أَفْوَاجًا.

"सहाबी-ए-रसूल जाबिर बिन अब्दुल्लाह ने कहा कि मैंने नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम को यह कहते हुए सुना है कि लोग फ़ौज-दर-फ़ौज अल्लाह के दीन में दाख़िल हो गए, अनक़रीब इसी तरह फ़ौज-दर-फ़ौज वे इसमें से निकल जाएँगे।"
(मुसनद अहमद, हदीस नंबर 14696)

एक शारेह ने इसकी तशरीह में ये अलफ़ाज़ लिखे हैं—

وَذَلِكَ فِي آخر الزَّمَان عِنْد وجود الأشراط.

"यह आख़िरी ज़माने में होगा, क़यामत की निशानियों के वजूद में आने के वक़्त।"
(अत-तैसीर बि शरह अल-जामे अस-सग़ीर, जिल्द 1, सफ़्हा 303)

ग़ौर करने से मालूम होता है कि यह हदीस दो दौरों से ताल्लुक़ रखती है। पैगंबर-ए-इस्लाम सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम के ज़माने में दौर-ए-शिर्क था। उस वक़्त रसूल और असहाब-ए-रसूल की दावती जद्दोजहद से लोग बड़ी तादाद में शिर्क से निकलकर तौहीद की तरफ़ आए।

इसके बाद वह दौर आया, जिसकी पेशगी इत्तिला इन अलफ़ाज़ में दी गई थी—

سَنُرِيهِمْ آيَاتِنَا فِي الْآفَاقِ وَفِي أَنْفُسِهِمْ حَتَّى يَتَبَيَّنَ لَهُمْ أَنَّهُ الْحَقّ.

"अनक़रीब हम उन्हें अपनी निशानियाँ दिखाएँगे— आफ़ाक़ में और अन्फ़ुस में, यहाँ तक कि उन पर ज़ाहिर हो जाएगा कि यह हक़ है।" (क़ुरआन, 41:53)

इस दौर में अहले-इस्लाम को यह करना था कि वे आफ़ाक़-ओ-अन्फ़ुस के दलाइल (ब-अलफ़ाज़ दीगर साइंसी दलाइल) को इस्तेमाल करते हुए लोगों को दुबारा तौहीद पर क़ायम करें, मगर मुसलमानों की नफ़रत-ए-मग़रिब की वजह से वे इस दौर को समझ नहीं सके और पूरी शिद्दत के साथ उसके मुख़ालिफ़ बन गए और मनफ़ी ज़ेहन के साथ टकराव में मशग़ूल हो गए।

इब्तिदा-ए-इस्लाम में वाक़या यह हुआ कि लोग शिर्क से निकलकर तौहीद में आए। इसके बाद एक नया दौर आया यानी साइंस का दौर, लेकिन जब साइंटिफिक ज़माना आया, तो तौहीद और शिर्क मुसावात (equation) बदल चुका था। अब तौहीद के मुक़ाबले में शिर्क नहीं था, बल्कि तौहीद के मुक़ाबले में इनकार-ए-ख़ुदा यानी इल्हाद (atheism) का ज़ोर था। इस वक़्त करने का काम यह था कि इल्हाद के मुक़ाबले के लिए माइंड को एड्रेस करने वाला मज़बूत लिटरेचर तैयार किया जाता, ताकि अगर जदीद तालीम-याफ़्ता लोगों के ज़ेहन में मज़हब के ख़िलाफ़ कोई कंफ़्यूज़न हो, तो वह दूर हो जाए, लेकिन बरअक्स तौर पर हमारे उलमा ने मॉडर्न तालीम-याफ़्ता लोगों पर मुर्तद होने का फ़तवा लगा दिया। इसका नतीजा यह हुआ कि जो लोग मज़हब के बारे में कंफ़्यूज़न का केस थे, वे दीन से बेज़ारी का केस बन गए।

हिंदुस्तान के एक मारूफ़ आलिम-ए-दीन ने एक किताब शाए की थी। उसका टाइटल था—

ردة ولا ابابكر لها

एक इर्तिदाद है, लेकिन इसके मुक़ाबले के लिए कोई अबू बकर नहीं।

इस किताब के मुसन्निफ़ (author) ने इस नए दौर को इर्तिदाद का दौर कहा था, लेकिन मुसलमानों के लिए अमलन वह बे-ख़बरी का

दौर था। इस ज़माने में मुसलमानों पर शिकायत और नफ़रत का ज़ेहन ग़ालिब था, इसलिए वे इस दौर को समझ नहीं सके।

यह साइंस का दौर था, जिसे क़ुरआन में आफ़ाक़-ओ-अन्फ़ुस के ज़ुहूर का दौर कहा गया था। क़ुरआन के बयान के मुताबिक़ यह दौर दीन-ए-हक़ की ज़्यादा तफ़्सील से समझाने का दौर है (41:53), मगर बे-ख़बरी की बिना पर पूरी मुस्लिम कम्युनिटी इस दौर को मुख़ालिफ़-ए-इस्लाम दौर समझकर इसमें पैदा-शुदा मौक़ों को अवेल करने से महरूम होकर रह गई। हालाँकि यह दीन की साइंस की वज़ाहत का दौर था। ऊपर लिखी हदीस को जब क़ुरआन की इस आयत के साथ मिलाकर समझा जाए, तो इससे गोया यह मालूम होता है कि इब्तिदा-ए-इस्लाम में शिर्क का मुक़ाबला करने के लिए मुसबत तर्ज़-ए-अमल (पॉज़िटिव एप्रोच) इख़्तियार किया गया था यानी दावत का तरीक़ा, जिससे लोग फ़ौज-दर-फ़ौज इस्लाम की तरफ़ आए। यही तरीक़ा इल्हाद के मुक़ाबले के लिए इख़्तियार किया जाए, ऐसा हरगिज़ नहीं होना चाहिए कि फ़तवा लगाकर ऐसे लोगों को दीन से दूर कर दिया जाए।

सी०पी०एस० इंटरनेशनल ने इस दौर को दरयाफ़्त किया और इसकी तर्दीद के बजाय दावत के नए दौर के तौर पर इसे इस्तेमाल किया। राक़िम-उल-हुरूफ़ (writer of these books) ने बड़े पैमाने पर असरी उस्लूब में दावती लिटरेचर तैयार किया है, जिसे सी०पी०एस० के लोग उर्दू, हिंदी, अंग्रेज़ी और दूसरी ज़बानों में छापकर वसीअ पैमाने पर फैला रहे हैं। सी०पी०एस० के तहत यह काम बड़े पैमाने पर अंजाम दिया जा रहा है।

ख़वातीन में दावत

आम तौर पर ऐसा होता है कि लोग दीनी काम के लिए किसी शख़्सियत को अपना रोल मॉडल बना लेते हैं, मसलन— कुछ लोग

इब्न तैमिया को अपना रोल मॉडल बनाए हुए हैं और कोई ग़ज़ाली को रोल मॉडल समझे हुए है वग़ैरह। फिर हर एक अपने मॉडल को वाहिद मेयारी (ideal) मॉडल मानकर शुरुआत करता है, लेकिन जब वह देखता है कि उसका गोल (goal) उसके लिए अचीवेबल (achievable) नहीं है, तो शऊरी या ग़ैर-शऊरी तौर पर वह समझ लेता है कि वह कोई क़ाबिल-ए-ज़िक्र काम नहीं कर सकता।

दूसरे अलफ़ाज़ में, वह अपने अमल का आग़ाज़ अमली इक़्दाम से करता है, न कि अफ़राद की ज़ेहन-साज़ी (conditioning) से। हक़ीक़त यह है कि किसी भी गहरी तहरीक का सही आग़ाज़ यह है कि पहले अफ़राद की ज़ेहन-साज़ी की जाए और जब ज़ेहन पूरी तरह बन चुका हो, तो उसके बाद एक्शन लिया जाए। ज़ेहन-साज़ी के बग़ैर क़दम उठाने का का मतलब बग़ैर तैयारी के क़दम उठाना है और जो क़दम तैयारी के बग़ैर उठाया जाए, उसका अंजाम पेशगी तौर पर मालूम है और वह है— मुकम्मल नाकामी।

‘अल-रिसाला मिशन’ ने इस मामले में एक अच्छी मिसाल क़ायम की है। मिस फ़हमिदा ख़ानम (पैदाइश : 1964) एक सीधी-सादी घरेलू ख़ातून हैं। वे मेरी किताबों का मुताला करती हैं और मेरी तक़रीरें सुनती हैं और सी०पी०एस० की मेंबर हैं। एक मर्तबा उनके दिल में यह ख़्याल आया कि वे दावत का काम पूरी तरह नहीं कर पा रही हैं। यह सोच उनकी ज़िंदगी की इंक़लाबी सोच साबित हुई। उन्होंने इसके बाद दुआ की और अपने ताल्लुक़ात की ख़वातीन से मिलकर एक व्हाट्सएप ग्रुप बनाया, जिसमें इन्होंने ख़वातीन के साथ ‘अल-रिसाला मिशन’ की आइडियोलॉजी की बुनियाद पर डिस्कशन शुरू किया।

यह ख़वातीन व्हाट्सएप के ज़रिये जमा हुईं। इसमें न सिर्फ़ इंडिया, बल्कि इंडिया के बाहर की ख़वातीन भी शामिल हैं। ये लोग रोज़ाना आपस में दीन और आदाब-ए-ज़िंदगी के ताल्लुक़ से पहले एक सवाल

रखती हैं, जो उन्हें रोजमर्रा की ज़िंदगी में पेश आया हो। फिर इस पर वे आपस में डिस्कशन करती हैं। यह डिस्कशन क़ुरआन व हदीस और 'अल-रिसाला' के मज़ामीन पर मबनी होता है या ज़ाती तजुर्बात-ओ-मुशाहदात (experiences and observations) पर। इसी के साथ वे यह भी करती हैं कि महीने में एक दिन सी०पी०एस० स्कॉलर टीम के साथ सवाल-जवाब प्रोग्राम रखती हैं। इससे उनके बहुत-से कन्फ़्यूज़न दूर होते हैं और दीन के बहुत-से नए पहलू खुलते हैं और उनका इंटेलेक्चुअल डेवलपमेंट होता है।

टीम की एक मेंबर डॉक्टर सफ़ीना तबस्सुम (सहारनपुर) ने एक दिन यह तास्सुर दिया कि आज मैं डिस्कशन में ज़्यादा हिस्सा नहीं ले सकी, मगर सारे मेसेजेस को पढ़कर बहुत अच्छा लगा। आज के डिस्कशन से मेरा टेकअवे (takeaway) यह है कि मैं अपने और अपनी फैमिली के अंदर एजुकेशन और इंटेलेक्चुअल डेवलपमेंट पर फोकस करूँगी और इस काम को इस तरह आगे बढ़ाऊँगी कि यह अगली नस्ल तक चलता रहे।

इस ग्रुप में पूरी दुनिया की सौ से ज़्यादा ख़वातीन शामिल हैं, जो अपना इंटेलेक्चुअल डेवलपमेंट कर रही हैं और दावत के काम को आगे बढ़ा रही हैं। यह वाक़या जब मैंने सुना, तो मुझे एक हदीस-ए-रसूल याद आई। हदीस के अलफ़ाज़ यह हैं—

جُعِلَتِ الْأَرْضُ كُلُّهَا لِي وَلِأُمَّتِي مَسْجِدًا وَطَهُورًا
فَأَيْنَمَا أَدْرَكَتْ رَجُلًا مِنْ أُمَّتِي الصَّلَاةُ فَعِنْدَهُ
مَسْجِدُهُ وَعِنْدَهُ طَهُورُهُ.

"पूरी ज़मीन मेरे लिए और मेरी उम्मत के लिए मस्जिद और पाक बना दी गई है। पस मेरी उम्मत के किसी फ़र्द के लिए जिस मक़ाम पर नमाज़ का वक़्त हो जाए, वहीं उसके लिए नमाज़ की जगह है और वहीं उसके लिए तहारत का सामान।"

(मुसनद अहमद, हदीस नंबर 22137)

तौसीअ (broader sense) एतिबार से इस हदीस पर ग़ौर किया जाए, तो इससे यह ख़ुश-ख़बरी मालूम होती है यानी ऐसा ज़माना आने वाला है, जबकि मज़हबी जबर की हालत ख़त्म हो जाएगी और उम्मत के लिए पूरी तरह यह मौक़ा होगा कि वे लोग जिस तरह मस्जिद में आज़ादी के साथ इबादत करते हैं, उसी तरह आज़ादी के साथ दुनिया में हर जगह इबादत और दावत का काम अंजाम दे सकेंगे, यहाँ तक कि इंटरनेट की वर्चुअल दुनिया (virtual world) में भी यानी फेसबुक और व्हाट्सएप वग़ैरह पर भी और एक-दूसरे के साथ बा-आसानी राब्ता क़ायम करना उनके लिए मुमकिन हो जाएगा। सी०पी०एस० ख़वातीन का यह काम बिला-शुब्हा क़ाबिल-ए-तारीफ़ है। हर एक औरत और हर एक मर्द मौजूदा दौर में इस तरह दीनी मिशन को आगे बढ़ा सकते हैं।

जन्नत माँ के क़दमों के नीचे

इस्लाम में माँ (mother) को बहुत आला मक़ाम दिया गया है। इस ताल्लुक़ से पैग़ंबर-ए-इस्लाम सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम की एक मशहूर हदीस यह है—

الْجَنَّةُ تَحْتَ أَقْدَامِ الْأُمَّهَاتِ.

“जन्नत माँओं के क़दमों के नीचे है।”

(मुस्नद अश-शिहाब अल-क़ुदाई, हदीस नंबर 119)

यह हदीस आम तौर पर जिस तरह से समझी जाती है, वह इसके हक़ीक़ी मतलब के बिलकुल बरअक्स है। इस हदीस को इस तरीक़े से लिया जाता है, जिसमें माँ को आला मक़ाम दिया गया है यानी बच्चा अगर जन्नत में दाख़िल होना चाहता है, तो वह मुकम्मल तौर पर माँ

की फ़रमाँ-बर्दारी करे, इसके बग़ैर बच्चे को जन्नत नहीं मिल सकती, मगर यह इस हदीस का दुरुस्त मतलब नहीं। नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने एक ड्यूटी कॉन्ससियस सोसाइटी की तामीर की है। इस्लामी तालीमात के मुताबिक़, फ़र्द की यह ज़िम्मेदारी है कि वह अपने फ़राइज़ को अदा करे, वह यह न देखे कि दूसरे क्या काम करते हैं। इस हक़ीक़त को रसूलुल्लाह ने दूसरे मक़ाम पर इस तरह बयान किया है—

"एक मोमिन को अपनी ज़िम्मेदारी अदा करनी चाहिए और जहाँ तक उसके हुक़ूक़ का ताल्लुक़ है, वह इसे ख़ुदा से माँगे।"
(सहीह बुख़ारी, हदीस नंबर 7052)

इस उसूल की बुनियाद पर 'जन्नत माँ के क़दमों तले वाक़ेअ है' का मतलब यह होगा कि बच्चे के मुक़ाबले में माँ की ज़िम्मेदारी बहुत ज़्यादा है। यह हदीस असल में एक माँ को मुख़ातब करती है, क्योंकि बच्चे की ज़िंदगी में इसका बहुत अहम रोल है।

दूसरे अलफ़ाज़ में, इस हदीस का मतलब यह है कि एक इंसान के अंदर जन्नत का शौक़ पैदा करना माँ के हाथ में है। मौलाना वहीदुद्दीन ख़ान साहब लिखते हैं—

"माँ की हैसियत से अपनी औलाद के लिए उसका सबसे बड़ा काम यह है कि वह अपनी औलाद को एक अच्छा इंसान बनाने की कोशिश करे। हर बच्चा फ़ितरत पर पैदा होता है। पैदाइश के एतिबार से हर बच्चा मिस्टर नेचर होता है, लेकिन बाद की कंडीशनिंग के नतीजे में हर बच्चा अपनी हक़ीक़ी फ़ितरत से दूर चला जाता है। यही वह मक़ाम है, जहाँ माँ को अपना तामीरी रोल अदा करना है।" (अल-रिसाला; दिसंबर, 2007)

"किसी बच्चे के तक़रीबन इब्तिदाई 10 साल वे हैं, जिनको नफ़्सियाती इस्तिलाह में तशकीली दौर (formative

period) कहा जाता है यानी इंसान के अंदरूनी और बाहरी नक़्श-ओ-निगार का दौर। यह तशकीली दौर बेहद अहम है, क्योंकि इस तशकीली दौर में किसी के अंदर जो शख़्सियत बनती है, वह बेहद अहम है। यही शख़्सियत बाद की पूरी उम्र में बाक़ी रहती है।” (अल-रिसाला; मार्च, 2019)

“माँ की हैसियत से औरत का रोल अगली नस्ल की तैयारी है। इंसान की नस्ल एक बहते नदी की मानिंद है। इंसानी समाज में मुसलसल ऐसा होता है कि पिछली नस्ल जाती रहती है और नई नस्ल उसकी जगह लेती रहती है। माँ का काम इसी नई नस्ल की तैयारी है। माँ की ज़िम्मेदारी यह है कि वह हर बार अगली नस्ल के लिए बेहतर इंसान बनाकर भेजे। बेहतर इंसान कौन है? बेहतर इंसान वह है, जिसके अंदर ज़िंदगी का हौसला हो, जो मनफ़ी सोच से बुलंद हो और मुसबत सोच का हामिल हो। जो अपने ज़ेहन के एतिबार से इस क़ाबिल हो कि वह तामीरी बुनियादों पर ज़िंदगी की मंसूबा-बंदी कर सके। जो अपने समाज के लिए कोई नई प्रॉब्लम पैदा न करे। जो अपने समाज का देने वाला मेंबर (giver member) हो, न कि सिर्फ़ लेने वाला मेंबर।” (अल-रिसाला; दिसंबर, 2007)

बच्चे मुस्तक़िल तौर पर अपनी माँ के साथ रहते हैं। अपनी ज़िंदगी के इब्तिदाई ज़माने में वे उसे सबसे ज़्यादा देख रहे होते हैं और ग़ैर-शऊरी तौर पर अपनी माँ की नक़ल करते हैं, मगर माँ जो काम भी करती है, वह उसका सोचा-समझा अमल होता है। इसलिए माँ को इस बात का बहुत ज़्यादा ख़्याल रखना चाहिए कि वह जो काम भी करे, वह ख़ुदा की रज़ा के मुताबिक़ करे।

जन्नत की राह एक ऐसी राह है, जो दुरुस्त प्लानिंग, तालीम, तर्बीयत और नाशुक्री के बजाय शुक्र, सब्र और ख़ुदा की मारिफ़त की

राह है। इस बिना पर इस हदीस में गोया एक माँ को यह ज़िम्मेदारी दी गई है कि वह अपने बच्चे को एक अच्छा इंसान बनाने में अपना किरदार अदा करे। यह हदीस माँओं के लिए एक संजीदा पुकार है कि वे अपनी अहमियत को समझें और अपने अंदर आला सिफ़ात पैदा करें, क्योंकि बच्चे अपने तशकीली दौर में सबसे ज़्यादा अपनी माँ की पैरवी करते हैं। डॉ. फ़रीदा ख़ानम

कामयाबी का पहला क़ानून

पुर-उम्मीद रहो, ना-उम्मीद न बनो

बर्तानवी तबीइय्यात-दाँ (British Physicist) और रियाज़ी-दाँ सर आइज़ैक न्यूटन (1642-1727) हरकत के क़ानून (Laws of Motion) की दरयाफ़्त के लिए मशहूर है। उसके दरयाफ़्त-कर्दा हरकत का तीसरा क़ानून कहता है कि इस दुनिया में हर अमल के लिए एक मुसावी और मुख़ालिफ़ रद्दे-अमल होता है।

For every action, there is an equal and opposite reaction

लेकिन एक और क़ानून भी है, जिसका मुशाहिदा ख़ुद न्यूटन की ज़िंदगी में किया जा सकता है। उसे कामयाबी का क़ानून कहा जा सकता है। न्यूटन के वालिद का इंतक़ाल उसकी पैदाइश से तीन माह क़ब्ल हो गया था। उसकी माँ ने जल्द ही दूसरी शादी कर ली। नतीजतन न्यूटन अपने वालिदैन की शफ़क़त से महरूम हो गया। न्यूटन के एक जीवनी-लेखक (biographer) लिखते हैं कि न्यूटन अपने घर में एक यतीम की तरह समझा जाता था, उसका बचपन ख़ुशगवार नहीं था।

Basically, treated as an orphan, Isaac (Newton) did not have a happy childhood.

न्यूटन के लिए बज़ाहिर यह एक मुश्किल सूरत-ए-हाल थी। वह चाहता तो अपने माइंड को शिकायतों का कबाड़ख़ाना बना देता, लेकिन हक़ीक़त में यह उसकी ज़िंदगी का सबसे बड़ा प्लस पॉइंट बन गया। बचपन के दिनों में ख़ारिजी दुनिया न्यूटन के लिए कोई कशिश नहीं रखती थी और वह हर वक़्त सोच में ग़र्क़ रहता था। इस बिना पर उसे ख़्यालों में गुम (Woolgatherer) या बे-ध्यान इंसान कहा जाने लगा, लेकिन बाद में पता चला कि न्यूटन बे-ध्यान इंसान नहीं था, बल्कि वह बहुत ज़्यादा ग़ौर-ओ-फ़िक्र में मशग़ूल रहता था। इसी मुसलसल फ़िक्री अमल का नतीजा यह निकला कि उसने हरकत के तीन क़ानूनों को दरयाफ़्त किया, जिससे साइंसी दुनिया में इंक़लाब पैदा हो गया।

न्यूटन के लिए वालिदैन की शफ़क़त से महरूमी बज़ाहिर एक मनफ़ी वाक़या था, लेकिन क़ानून-ए-फ़ितरत के मुताबिक़ यह उसके लिए फ़ायदे का सौदा साबित हुआ। इसकी वजह यह थी कि वालिदैन की शफ़क़त से महरूमी ने उसे अपनी पोशीदा फ़िक्री सलाहियत को परवान चढ़ाने का मौक़ा दिया यानी फ़िक्री सलाहियत की तरक़्क़ी। इस तरह न्यूटन अपनी फ़िक्री तरक़्क़ी के नतीजे में इस क़ाबिल हो गया कि वह अपनी ज़िंदगी के माइनस पहलू को प्लस में तब्दील कर सके।

कामयाबी का यह फ़ितरी क़ानून किसी एक फ़र्द के लिए मख़्सूस नहीं है, बल्कि यह मौक़ा ज़मीन पर बसने वाले तमाम औरत और मर्द के लिए खुला हुआ है। न्यूटन की ज़िंदगी फ़ितरत के इस अहम क़ानून का अमली मुज़ाहरा है। हक़ीक़त यह है कि हर इंसान को उसके ख़ालिक़ ने ला-महदूद पोटेंशियल (potential) के साथ पैदा किया है। इस पोटेंशियल को एक्चुअल (actual) बनाना सिर्फ़ चैलेंज के हालात में मुमकिन है। अगर चैलेंज न हो तो इंसान की शख़्सियत में छुपे हुए इमकानात ज़ुहूर में नहीं आएँगे, इंसानी इर्तिक़ा का अमल मुकम्मल तौर पर रुक जाएगा और इंसान अपनी तकमील से महरूम रह जाएगा।

चैलेंज से कामयाबी की तरफ़ उसके सफ़र को जुमूद या मायूसी के सिवा कोई और चीज़ नहीं रोक सकती है। अगर वह मायूस या जुमूद का शिकार न हो, तो उसकी अपनी फ़ितरत ख़ुद-ब-ख़ुद उसकी रहनुमाई करेगी और उसे नाक़ाबिल-ए-यक़ीन हद तक तरक़्क़ी की मंज़िल तक ले जाएगी। तारीख़ में ऐसे लोगों की बहुत-सी मिसालें मौजूद हैं, जो अपनी इब्तिदाई उम्र में मुख़्तलिफ़ क़िस्म की परेशानियों का शिकार हो गए। इसके बावजूद उन्होंने अपने आपको मायूसी से दूर रखा और अपनी सलाहियत को किसी बा-मअनी मक़सद की तरफ़ मोड़ दिया। कुछ दिनों के बाद वे आला कामयाबी से हम-किनार हुए, जिसके बारे में वे अपने इब्तिदाई दिनों में सोच भी नहीं सकते थे। इसकी एक मिसाल इंडिया के साबिक़-ए-सदर ए०पी०जे० अब्दुल कलाम (वफ़ात : 2015) हैं।

ज़िंदगी में लोगों को अकसर ना-ख़ुशगवार हालात का सामना करना पड़ता है। मिसाल के तौर पर यतीमी, हादसात का सामना, माद्दी नुक़सान को बरदाश्त करना, तालीम का ना-मुकम्मल रहना, आबाई विरासत से महरूम होना, अच्छी नौकरी हासिल करने में नाकामी वग़ैरह, लेकिन वे लोग, जो इन नाकामियों के बावजूद कभी हिम्मत नहीं हारते और मुसबत अंदाज़ में मुसलसल कोशिशें जारी रखते हैं, वही आख़िर में कामयाबी हासिल करने वाले (super achiever) 'सुपर अचीवर' के तौर पर उभरते हैं।

डायरी : 1986

1 मई, 1986

आज मौलाना शकील अहमद क़ासमी (मेरठ) से मुलाक़ात हुई। वे मेरठ के एक अरबी मदरसे में सदर-ए-मुदर्रिस हैं। उन्होंने बताया कि

हापुड़ में शब-ए-बरात (शाबान, 1406) के दिन जो फ़साद हुआ था, वह किस तरह हुआ था। उसका क़िस्सा यह था कि कुछ मुसलमान सड़क पर आतिशबाज़ी कर रहे थे। पड़ोसी हिंदू के घर में चिंगारियाँ गईं, तो उसने बाहर निकलकर मुसलमानों को मना किया। इसके बाद मुसलमान और ज़्यादा ज़ोर से आतिशबाज़ी करने लगे। गोया वह कोई बहुत बड़ा इस्लामी काम हो। अब पड़ोसी हिंदू ने मज़ीद शिद्दत के साथ मना किया। मुसलमानों को ग़ुस्सा आ गया और हिंदू को मारने लगे। उसके लड़के का नाम नरेश था, उसे इतनी बुरी तरह मारा कि वह ज़ख़्मी होकर गिर पड़ा और अस्पताल जाते-जाते मर गया।

इसके बाद बस्ती में फ़साद की फ़िज़ा पैदा हो गई, मगर हुस्न-ए-इत्तिफ़ाक़ से मजिस्ट्रेट बहुत अच्छा था। उसने सारे शहर में पुलिस फैला दी और निहायत सख़्ती के साथ फ़साद को कंट्रोल कर लिया। मौलाना शकील अहमद साहब क़ासमी ने बताया कि फ़साद अगरचे वक़्ती तौर पर रुक गया है, मगर मक़ामी हिंदुओं में ग़म और ग़ुस्सा बाक़ी है। बज़ाहिर इसका इमकान नहीं है कि वे इसे भूल जाएँगे, क्योंकि उनके एक नौजवान नरेश को मुसलमानों ने मार-मारकर हलाक कर दिया है।

मैंने कहा कि बज़ाहिर ये कुछ मुसलमानों की हिमाक़त है, मगर हक़ीक़त यह है कि इसके बराह-ए-रस्त ज़िम्मेदार हमारे क़ाइदीन हैं। मुस्लिम क़ाइदीन का तरीक़ा यह है कि वे पुरजोश तक़रीरें करके मुस्तक़िल तौर पर मुसलमानों को जज़्बाती बनाए हुए हैं। वे हर मामले में एकतरफ़ा तौर पर हिंदुओं को और हुकूमत को ज़िम्मेदार ठहराते हैं, जिसका नतीजा यह है कि मुसलमानों के दिल में बिरादरान-ए-वतन के ख़िलाफ़ नफ़रत भर गई है। मज़ीद यह कि जब इस तरह के मुसलमान बेजा तौर पर मुश्तइल होकर मज़कूरा क़िस्म की हरकतें करते हैं, तो हमारे क़ाइदीन कभी ऐसा नहीं करते कि वे मुसलमानों को तंबीह करें। वे हमेशा एकतरफ़ा तौर पर हिंदुओं को बुरा-भला कहते हैं। इन सब

बातों का यह नतीजा है कि फ़साद का सिलसिला किसी तरह ख़त्म नहीं होता।

2 मई, 1986

आज इस्लामिक इंस्टीट्यूट (तुग़लक़ाबाद) में एक ख़ुसूसी तक़रीब थी। यह तक़रीब पाकिस्तान के सफ़ीर डॉ. हुमायूँ ख़ान की इज़्ज़त-अफज़ाई में की गई थी। इंस्टीट्यूट के ख़ुसूसी हॉल में लंबी मेज़ के किनारे आला तालीम-याफ़्ता मुसलमानों की बड़ी तादाद बैठी हुई थी। मैं भी इसमें शरीक था।

मैं इस उम्मीद में शरीक हुआ था कि कुछ इल्मी मौज़ूआत या अहम इस्लामी मुद्दों पर गुफ़्तुगू होगी और मुसलमानों के आला तालीम-याफ़्ता तबक़े के ख़्यालात सुनने का मौक़ा मिलेगा, मगर वहाँ गुफ़्तुगू ज़्यादातर शाह बानो बेगम और मुस्लिम पर्सनल लॉ के मौज़ू के इर्द-गिर्द घूमती रही।

लोगों ने मुझसे कहा कि आप भी अपनी राय दीजिए, मगर मैं ख़ामोश सिर्फ़ सुनता रहा। हक़ीक़त यह है कि मेरे लिए यह बात ज़्यादा ख़ुशी की न थी कि मुसलमानों का आला तालीम-याफ़्ता तबक़ा किसी मुक़ाम पर इकट्ठा हो और उनके पास गुफ़्तुगू के लिए जो मौज़ू हो, वह शाह बानो बेगम और मुतल्लक़ा को गुज़ारा देने का मसला हो।

यह अलामती तौर पर पूरे जदीद दौर में मुसलमानों की तस्वीर है। मौजूदा दौर मुसलमानों के लिए निहायत फ़ैसलाकुन दौर था, मगर हमारे क़ाइदीन ने जदीद दौर और इसके बुनियादी मसाइल को न पहले समझा और न ही आज समझ रहे हैं। सौ बरस से उनका यही हाल है कि वे कोई शोशे की चीज़ लेकर उसे उछालते हैं। इस पर धुआँदार तक़रीरें होती हैं और जलसा और जलूस के हंगामे किए जाते हैं। चूँकि अवाम ख़वास के तरीक़े पर होती है, इसलिए वह भी वही बोली बोलती है, जो उनके ख़वास बोल रहे हों।

अगर हमारे क़ाइदीन बुनियादी मसाइल को छेड़ते, तो वही सबकी बातचीत का मौज़ू बना रहता है, मगर जब वे ‘शाह बानो बेगम’ जैसे मसाइल को छेड़ेंगे, तो वही चीज़ अवाम का मौज़ू-ए-गुफ़्तगू बनेगी, जिसे उन्होंने सबसे ज़्यादा छेड़ा है।

3 मई, 1986

मुझे तिब्बिया कॉलेज (सहारनपुर) से एक ख़त (30 अप्रैल, 1986) मिला। इसमें ख़ाहिश ज़ाहिर की गई थी कि मैं उनकी सालाना मैगज़ीन के लिए एक पैग़ाम भेजूँ।

आम तरीक़ा यह है कि इस क़िस्म का ख़त जब किसी के पास आता है, तो वह क़लम और दवात से एक तहरीर लिखकर रवाना कर देता है। यही वजह है कि इन पैग़ामात में रस्मी कलिमात के सिवा और कुछ नहीं होता, मगर मुझे रस्मी कलिमात लिखकर तसकीन नहीं होती। मैं चाहता हूँ कि कोई ऐसी बात लिखूँ, जिसे हिंदी में ‘तत्त्व’ (core) की बात कहते हैं। चुनाँचे ख़त मिलने के बाद मैंने ‘एनसाइक्लोपीडिया ऑफ़ ब्रिटानिका’ निकाली और तिब्बिया कॉलेज की मुनासबत इसमें ‘हिस्ट्री ऑफ़ मेडिसिन’ (history of medicine) का बाब पढ़ना शुरू किया।

इसे पढ़ते हुए एक बड़ी कारामद चीज़ मिल गई। मक़ाला-निगार (writer) ने लिखा था कि क़ुरून-ए-वुस्ता (Middle Ages) में मुसलमानों ने तिब्ब और साइंस में जो ग़ैर-मामूली तरक़्क़ी की, वह बड़ा ताज्जुब-ख़ेज़ वाक़या है। यह वह ज़माना है, जबकि सारी दुनिया में इल्मी पसमांदगी (backwardness) का दौर था। इस ज़माने में इल्म-उल-अफ़लाक (Astronomy) इल्म-ए-नुजूम (Astrology) के हम-मानी बना हुआ था और केमिस्ट्री का इल्म महज़ कीमियागिरी था, जिसका मतलब यह था कि मामूली धात को सोना किस तरह बनाया

जाए। ऐसे अंधविश्वास (superstition) के दौर में मुसलमानों की इल्मी तरक़्क़ी बेहद हैरत-अंगेज़ है। (जिल्द 11, सफ़्हा 828)

एनसाइक्लोपीडिया में सिर्फ़ इतनी-सी बात दर्ज थी। मैंने इसमें यह इज़ाफ़ा किया कि इसकी वजह तौहीद का अक़ीदा था। तौहीद का अक़ीदा आदमी को अंधविश्वास से निकालता है। वह आदमी को हर क़िस्म के मस्नूई (Artificial) बंधनों से आज़ाद होकर सोचना सिखाता है। वह आदमी को बरतर हक़ीक़त की तरफ़ बढ़ने का जज़्बा पैदा करता है। यही वह चीज़ थी, जिसने मुसलमानों को मज़कूरा कारनामे के क़ाबिल बनाया। मौजूदा ज़माने में मुसलमानों से ऐसे कारनामे ज़ाहिर नहीं हो रहे हैं। इसकी वजह यह है कि मौजूदा ज़माने के मुसलमानों के लिए तौहीद महज़ एक रस्मी अक़ीदा है, वह उनके लिए ज़ेहनी इंक़लाब के हम-मअनी नहीं।

4 मई, 1986

आज इंडिया इंटरनेशनल सेंटर (नई दिल्ली) में एक प्रोग्राम था। यह प्रोग्राम इंडिया के एक मारूफ़ आलिम-ए-दीन के हलक़ा की तरफ़ से किया गया था। प्रोग्राम के इब्तिदा में मज़कूरा आलिम-ए-दीन की तक़रीर हुई। इसके बाद हाज़िरीन की तरफ़ से सवालात-ओ-जवाबात हुए। हाज़िरीन में तक़रीबन निस्फ़ (Half) हिंदू और निस्फ़ मुस्लमान थे। कुल मिलाकर 100 से कम अफ़राद थे। तक़रीर उर्दू ज़बान में थी। अलबत्ता उसका अंग्रेज़ी तर्जुमा लोगों के दरमियान तक़सीम किया गया। अंग्रेज़ी तर्जुमे का 'उनवान यह था—

Try to understand the problems and sentiments of Indian Muslims.

तक़रीर तक़रीबन एकतरफ़ा तौर पर मुसलमानों के बचाव में थी। उनकी तक़रीर का तास्सुर बज़ाहिर यह था कि इस मामले में सारी ज़िम्मेदारी हिंदू फ़िरक़े की है।

मुक़र्रर मौसूफ़ (aforementioned) ने कहा कि मुसलमान अपने पर्सनल लॉ की हिफ़ाज़त चाहते हैं। यह एक फ़ितरी बात है और मुसलमानों को अपने इस्लामी तशख़्ख़ुस (पहचान) को बरक़रार रखने के लिए उसका मुतालिबा करना चाहिए, मगर मुल्क की प्रेस और मुल्क के दानिशवरों ने जिस रद्दे-अमल का इज़हार किया है, वह बहुत ना-मुनासिब है। इस मामले में इतना ज़्यादा शोर किया गया है कि गोया मुल्क पर एटम बम का हमला हो गया है। उन्होंने कहा कि ज़िंदगी में एहसास-ए-तनासुब (sense of proportion) की बेहद अहमियत है। अगर आप शेर पर एयर गन चलाएँ और एक छोटी चिड़िया को राइफल से मारें, तो यह संतुलन को खो देना होगा। यही मुसलमानों के साथ किया गया है।

मज़कूरा आलिम-ए-दीन जब यह बात कह रहे थे तो, तो मैंने सोचा कि वे ख़ुद क्या कर रहे हैं। मुस्लिम पर्सनल लॉ के अनासिर में ऑल इंडिया मुस्लिम पर्सनल लॉ बोर्ड के सदर की हैसियत से उन्होंने रात-दिन जो धूम मचा रखी है, क्या वही धूम वे इस्लाम के दूसरे मामलात के लिए भी मचा रहे हैं। मसलन हिंदुस्तान के 80 करोड़ ग़ैर-मुस्लिमों तक इस्लाम को पहुँचाने के लिए क्या उन्होंने वह जद्दोजहद की है, जो हक़ीक़ी तनासुब के एतिबार से इसके लिए की जानी चाहिए?

5 मई, 1986

मेरी एक ख़ातून रिश्तेदार का वाक़या है। उसकी शादी हल्द्वानी में हुई है। शादी के बाद वह अपने ससुराल में बहुत ख़ुश रहती थी। वालिदा मरहूमा की बीमारी के ज़माने में एक मर्तबा उन्हें देखने के लिए हमारे यहाँ आई, तो उस वक़्त वह बहुत तंदुरुस्त थी और हर वक़्त बस हँसे जा रही थी।

कल मालूम हुआ कि उसका मानसिक संतुलन ख़राब हो गया है और वह मेंटल केस के तौर पर ऑल इंडिया मेडिकल इंस्टीट्यूट (एम्स)

में दाख़िल है। चुनाँचे मैं अपने घरवालों के साथ उसे देखने के लिए एम्स गया। वहाँ बड़े कमरे में मरीज़ा के बहुत सारे रिश्तेदार जमा थे, जिनमें मर्द भी थे और औरतें भी।

उस वक़्त एक बड़ा अजीब वाक़या हुआ। मरीज़ा जो दीवानगी की हालत में थी और अजीब-अजीब हरकतें कर रही थी, वह हर एक को उसके नाम के साथ पुकार रही थी, मगर मेरे साथ उसने बिलकुल मुख़्तलिफ़ मामला किया। जब मैं मरीज़ा के सामने आया, तो मरीज़ा की माँ ने मरीज़ा को मेरे बारे में बताया, मगर मरीज़ा ने इसकी तर्दीद करते हुए कहा कि यह तो 'अल्लाह वाले' हैं। इसके बाद वह बार-बार यही दोहराती रही— 'अल्लाह वाले आए हैं, अल्लाह वाले आए हैं।'

कुछ देर के बाद मरीज़ा ने कहा कि मुझे डर लग रहा है। चुनाँचे लोगों ने उसे सुलाकर उसके पाँव पर कंबल डाल दिया। उस वक़्त भी वह कहती रही कि 'अल्लाह वाले आए हैं, अल्लाह वाले आए हैं।'

मैं ज़ाती तौर पर मबहूत (astonished) खड़ा हुआ उसे देख रहा था और यह सोच रहा था कि इंसान भी किस क़द्र आजिज़ है। एक लम्हे में क्या से क्या हो जाता है। दौलत, तंदुरुस्ती, आल-ओ-औलाद किसी चीज़ की कोई हक़ीक़त नहीं। ये तमाम-तर अल्लाह के इख़्तियार में हैं कि जिस शख़्स को चाहे जिस हाल में रखे। जब चाहे किसी को दे और जब चाहे किसी से छीन ले।

6 मई, 1986

4 मई, 1986 को इंडिया इंटरनेशनल सेंटर (नई दिल्ली) में डायलॉग (dialogue) के नाम से एक इज्तिमा था। यह डायलॉग सेंटर के कॉन्फ्रेंस रूम में हुआ। हिंदू और मुसलमान दोनों शरीक थे। इंडिया के एक दीनी क़ाइद, जो कि मारूफ़ आलिम-ए-दीन भी हैं, उनकी तक़रीर से इसका आग़ाज़ हुआ। तक़रीर करते हुए उन्होंने पुरजोश तौर पर कहा

कि मुसलमानों से वफ़ादारी का सबूत माँगा जाता है। यह हमारे लिए नाक़ाबिल-ए-बरदाश्त है। किसी को हक़ नहीं कि वह हमसे हमारी वफ़ादारी का सबूत माँगे। उन्होंने मज़ीद कहा कि जहाँ तक मेरी ज़ात का ताल्लुक़ है, मैं हरगिज़ हिंदुस्तान में रहने पर मजबूर नहीं। मुझे कितने ही मुल्कों की यूनिवर्सिटियों से ऑफर मिल रहे हैं और मैं बाहर जाकर आराम के साथ रह सकता हूँ।

यह बात बतौर वाक़या सही हो सकती है कि न सिर्फ़ मज़कूरा दीनी क़ाइद, बल्कि उनके जैसे दूसरे बहुत-से क़ाइदीन को बाहर के मुस्लिम मुल्कों के मदरसों और जामिआत (Universities) से ऑफर मिल रहे हैं, मगर यह ऑफर किस चीज़ का है। वह यक़ीनी तौर पर मुलाज़मत का है, न कि क़यादत (leadership) का। मज़कूरा दीनी क़ाइद और उनके जैसे दूसरे क़ाइदीन मुस्लिम मुल्कों में जाकर अपने लिए रोज़गार ज़रूर हासिल कर सकते हैं, मगर वे किसी भी मुल्क में इस तरह क़ाइद बनकर नहीं रह सकते, जैसे कि वे हिंदुस्तान में बने हुए हैं।

हिंदुस्तान में मज़कूरा आलिम-ए-दीन ने 1966 में अपोज़िशन के साथ मिलकर मुख़ालिफ़-ए-कांग्रेस (नॉन-कांग्रेसिज़्म) की तहरीक चलाई। 1985-86 में वे मुस्लिम पर्सनल लॉ के नाम पर हुकूमत के ख़िलाफ़ जलसा और जुलूस की सियासत चला रहे हैं। इसी क़िस्म की सरगर्मियों को मैं क़यादत कह रहा हूँ और किसी भी मुस्लिम मुल्क में इस तरह की क़ाइदाना सरगर्मियाँ क़तई नामुमकिन हैं। मज़कूरा दीनी क़ाइद अगर किसी मुस्लिम मुल्क में जाकर वहाँ इस क़िस्म की सरगर्मी दिखाएँगे, तो यक़ीनी तौर पर वहाँ से निकाल दिए जाएँगे। किसी भी मुस्लिम मुल्क में क़ियाम (stay) की इजाज़त उन्हें सिर्फ़ इस क़ीमत पर मिलेगी कि वे सियासत और क़यादत की ज़िंदगी छोड़कर सिर्फ़ मुलाज़मत की ज़िंदगी पर क़ाने (satisfied) हो जाएँ।

यहाँ मैं इज़ाफ़ा करूँगा कि मज़कूरा दीनी क़ाइद और उनके जैसे मुस्लिम क़ाइदीन अगर हिंदुस्तान में भी क़यादत को छोड़कर सिर्फ़ मुलाज़मत पर क़ाने हो जाएँ, तो यहाँ भी वे इत्मीनान के साथ रह सकते हैं। इसके बाद कोई शख़्स उनसे वफ़ादारी का मुतालिबा करने वाला नहीं।

7 मई, 1986

'टाइम्स ऑफ़ इंडिया' (3 मई, 1986) के पहले पन्ने पर एक तस्वीर है। इस तस्वीर में एक शख़्स को इस तरह दिखाया गया है कि वह ज़मीन पर सिर रखकर सजदा कर रहा है। तस्वीर देखकर बज़ाहिर वह मस्जिद का एक वाक़या मालूम होता है, मगर यह मस्जिद का वाक़या नहीं। चुनाँचे तस्वीर के नीचे हस्ब-ए-ज़ैल अलफ़ाज़ लिखे हुए हैं—

> "The Punjab Chief Minister, Mr Surjit Singh Barnala, paying obeisance at the Golden Temple, on May 2, 1986."

मिस्टर सुरजीत सिंह बरनाला पंजाब के चीफ़ मिनिस्टर हैं। उनकी मर्ज़ी के तहत गोल्डन टेंपल (अमृतसर) में 30 अप्रैल को पुलिस एक्शन हुआ। पुलिस एक्शन होने के बाद वे स्वर्ण मंदिर (गोल्डन टेंपल) गए, जो सिखों के नज़दीक उनका सबसे ज़्यादा मुक़द्दस मक़ाम है। जब वे वहाँ पहुँचे, तो उन्होंने इज़हार-ए-अक़ीदत के तौर पर अपना सिर ज़मीन पर रख दिया। उस वक़्त उनकी हैअत (exterior form) ठीक वैसी थी, जैसी नमाज़ में सजदा करने वाले की होती है।

नमाज़ में सजदा करने का जो तरीक़ा बताया गया है, वह बड़ा अजीब है। हक़ीक़त यह है कि उबूदियत (submission) के इज़हार के लिए यह आख़िरी तरीक़ा है। इससे आगे कोई तरीक़ा मुमकिन नहीं है।

उबूदियत का जज़्बा एक फ़ितरी जज़्बा है। इंसान ऐन अपनी फ़ितरत के ज़ोर पर यह चाहता है कि वह किसी के आगे अपने को झुका दे। ख़ुदा के सिवा दूसरी जिन चीज़ों के आगे सजदा करे, वह हक़ीक़तन अपने जज़्बा-ए-उबूदियत का ग़लत इस्तेमाल कर रहा है। आदमी जब ख़ुदा को पाए हुए न हो, तो वह जिस चीज़ को भी बज़ाहिर नुमायाँ देखता है, उसके आगे अपने को झुका देता है। इसी का नाम शिर्क है यानी जो चीज़ सिर्फ़ एक ख़ुदा का हक़ है, उसमे दूसरों को शरीक करना और शिर्क बिला-शुब्हा सबसे बड़ा गुनाह है। इंसान 'सजदा' करने पर मजबूर है, मगर सच्चा सजदा वही है, जो ख़ुदा के लिए किया गया हो।

8 मई, 1986

दो साहिबान तशरीफ़ लाए। वे हरियाणा के रहने वाले थे। वे चाहते थे कि मुझे अपने यहाँ तक़रीर कराने के लिए ले जाएँ। उन्होंने कहा कि हम 'अल-रिसाला' पढ़ते रहे हैं। हमें 'अल-रिसाला' की तर्ज़-ए-फ़िक्र से इत्तिफ़ाक़ है। इस अंदाज़ पर हम वहाँ एक इस्लामी इदारा क़ायम करना चाहते हैं, जिसमें मस्जिद और मदरसा, मुसाफ़िर-ख़ाना और मुख़्तलिफ़ क़िस्म के हुनर सिखाने का शोबा होगा। मक़ामी तौर पर कुछ लोग अपनी ज़ाती लीडरी के लिए हमारी मुख़ालिफ़त कर रहे हैं। अगर आप एक दिन और एक रात के लिए हमारे यहाँ आ जाएँगे, तो ये मुख़ालिफ़ीन दब जाएँगे।

उस इलाक़े में 'अल-रिसाला' अभी नहीं फैला है। मैंने उन हज़रात से कहा कि अगर आप मुझे वहाँ ले जाना चाहते हैं, तो पहले आप 'अल-रिसाला' को अपने इलाक़े में फैलाइए। एजेंसी लीजिए। जब वहाँ 'अल-रिसाला' के पढ़ने वाले क़ाबिल-ए-लिहाज़ तादाद में पैदा हो जाएँगे, उस वक़्त वह फ़िज़ा बनेगी जिसमें मेरा वहाँ जाना मुफ़ीद होगा। फ़िज़ा बनने से पहले अगर मैं वहाँ जाऊँ, तो लोग मेरी बात को समझ नहीं सकेंगे और सफ़र का कोई फ़ायदा नहीं होगा।

वे लोग मुझे अपने इलाक़े में ले जाने पर काफ़ी इसरार कर रहे थे, मगर जब मैंने 'अल-रिसाला' की एजेंसी क़ायम करने की बात की, तो उनका जोश ठंडा पड़ गया। इसके बाद वे दोनों ख़ामोशी के साथ उठकर चले गए।

यही हमारी क़ौम की आम हालत है। लोग तामीरी काम की बात करते हैं, मगर वे तामीरी काम की क़ीमत देने के लिए तैयार नहीं। इस वक़्त सबसे बड़ा मसला यह है कि लोगों का ज़ेहन बिगड़ा हुआ है। लीडरों ने अपनी झूठी सियासत से पूरी क़ौम को मनफ़ी सोच में डाल रखा है। ऐसी हालत में सबसे पहला काम यह है कि ज़ेहनों की इस्लाह की जाए। लोगों को हक़ीक़त-पसंदाना अंदाज़ में सोचने वाला बनाया जाए। इसके बाद ही कोई हक़ीक़ी तामीरी काम किया जा सकता है, मगर ज़ेहन बनाने का काम ख़ुश्क काम है, इसलिए कोई इसके लिए तैयार नहीं होता।

9 मई, 1986

एक पाकिस्तानी मुसलमान से मुलाक़ात हुई। मैंने पूछा कि पाकिस्तान में हिंदुओं का क्या हाल है? उन्होंने कहा कि पाकिस्तान में अव्वलन तो हिंदू बहुत ही कम हैं। उनकी ज़्यादा तादाद 1947 के इंक़लाब में पाकिस्तान को छोड़कर हिंदुस्तान चली आई और जो थोड़े-से हिंदू वहाँ रह गए हैं, वे तहज़ीबी एतिबार से बिलकुल मुसलमानों की तरह रह रहे हैं। किसी भी एतिबार से वे अपना तशख़्ख़ुस (individuality) बाक़ी रखने की कोशिश नहीं करते।

मैंने कहा कि यह एक बहुत अहम बात है। इससे मुसलमानों को सबक़ लेना चाहिए। पाकिस्तान की तहरीक मुसलमानों ने यह कहकर चलाई थी कि ग़ैर-मुंक़सिम (undivided) हिंदुस्तान को दो ज़ुग़राफ़ी हिस्सों में बाँट दिया जाए। एक हिंदू इंडिया और दूसरा मुस्लिम इंडिया। एक तरफ़ वे हो जाएँ और दूसरी तरफ़ हम हो जाएँ। मुसलमानों की एक

बहुत बड़ी अकसरियत (majority) ने इस नारे का साथ दिया और हिंदुस्तान और पाकिस्तान की शक्ल में अलग हो गया।

पाकिस्तान को हिंदुओं से तक़रीबन ख़ाली करा लिया गया। वहाँ ऐसे हालात पैदा किए गए कि हिंदू अपनी अलग क़ौमी पहचान के साथ वहाँ न रह सकें। वे वहाँ सिर्फ़ इस क़ीमत पर रह सकते थे कि वे मुस्लिम तहज़ीब में बिलकुल मिल जाएँ। मौजूदा पाकिस्तान इसका एक नमूना है। इसके बरअक्स हिंदुस्तान में बावजूद यह कि वह पाकिस्तानी समझ के मुताबिक़ हिंदू इंडिया था, मुसलमान लगभग 10 करोड़ की तादाद में बाक़ी रहे यानी इससे भी ज़्यादा जितना कि वे मौजूदा पाकिस्तान में हैं। मज़ीद यह कि उन्होंने यहाँ पूरे मअनों में अपनी क़ौमी पहचान को बाक़ी रखा है।

इसके बावजूद हिंदुस्तान के हिंदू मुसलमानों को बरदाश्त कर रहे हैं। हिंदुस्तान में जो नामनिहाद फ़िरक़ा-वाराना फ़सादाद होते हैं, वे तमामतर मुसलमानों की हिमाक़त (foolishness) या शरारत से होते हैं। अगर हिंदू इसी इंतिहा-पसंदाना ज़ेहन का सुबूत देता, जिसका सुबूत पाकिस्तान के मुसलमानों ने दिया है, तो आज हिंदुस्तान में मुसलमानों की तारीख़ दूसरी नज़र आती।

हदीस में आया है कि जो शख़्स इंसान का शुक्र न करे, वह ख़ुदा का भी शुक्र नहीं कर सकता (مَنْ لَمْ يَشْكُرِ النَّاسَ، لَمْ يَشْكُرِ اللهَ عز وجل) (मुसनद अहमद, हदीस नंबर 7504)। इस हदीस के मुताबिक़ मुसलमानों को हिंदुओं का शुक्रगुज़ार होना चाहिए। अगर वे हिंदू के शुक्रगुज़ार न बनेंगे, तो वे ख़ुदा के शुक्रगुज़ार भी नहीं बन सकते।

10 मई, 1986

मई, 1986 में मुस्लिम ख़वातीन के तलाक़ से मुताल्लिक़ क़ानून लोकसभा और राज्यसभा से पास होकर बाक़ायदा एक्ट बन गया। उसका सरकारी नाम यह है—

Muslims Women (Protection of Rights on Divorce) Bill 1986

इस बिल पर मुस्लिम लीडर आजकल ख़ुशियाँ मना रहे हैं। इसे वे सेक्युलर हिंदुस्तान में इस्लाम की अज़ीम फ़तह समझते हैं, मगर हक़ीक़त यह है कि यह ख़ुश-फ़हमी के सिवा और कुछ नहीं। यह झूठी फ़तह पर झूठी ख़ुशी मनाना है और यह वह चीज़ है, जिसमें मुसलमान पिछले सौ साल से मुब्तला हैं।

एक लतीफ़ा है कि एक इलाक़े में एक शेर घुस आया। उसने जानवरों और इंसानों को फाड़ना शुरू कर दिया। सारे इलाक़े में ज़बरदस्त ख़ौफ़ फैल गया। उस वक़्त एक बुज़ुर्ग ने यह किया कि अपने घर में काग़ज़ का एक शेर बनाया और फिर उस काग़ज़ी शेर पर हमला करके उसका ख़ात्मा कर दिया। बुज़ुर्ग ने यह समझा कि उन्होंने शेर पर फ़तह हासिल कर ली है। हालाँकि उन्होंने जिस चीज़ पर फ़तह हासिल की थी, वह महज़ एक काग़ज़ की तस्वीर थी, न कि हक़ीक़तन एक ज़िंदा शेर।

यही माहौल मौजूदा ज़माना में मुसलमानों का हुआ है। वे एक के बाद एक काग़ज़ी शेर बनाते हैं और उसे हलाक करके यह समझते हैं कि उन्होंने इस्लाम-मुख़ालिफ़ ताक़तों पर फ़तह हासिल कर ली, मगर इस्लाम-मुख़ालिफ़ ताक़तें बदस्तूर मौजूद रहती हैं, बल्कि उनमें दिन-ब-दिन इज़ाफ़ा हो रहा है।

जो शख़्स भी हालात पर गहरी नज़र रखता हो, उसके लिए यह समझना मुश्किल नहीं कि मज़कूरा मुस्लिम ख़वातीन के बिल का कुछ भी ताल्लुक़ असल हालात की इस्लाह से नहीं है। यह एक हक़ीक़त है कि मुतल्लक़ा (divorcee) मुस्लिम ख़वातीन का मसला एक मुआशरती (social) मसला है, न कि कोई क़ानूनी मसला। इस क़िस्म

के क़वानीन से यह उम्मीद रखना कि असल मसला इससे हल हो जाएगा, ऐसा ही है, जैसे काग़ज़ी शेर को मारकर यह समझना कि ज़िंदा शेर भी हलाक हो गया है।

हमारे क़ाइदीन को अगर मिल्लत का दर्द है, तो उन्हें मुआशरे की इस्लाह में लग जाना चाहिए। मज़कूरा बाला क़िस्म की कोशिश क़ुरआन के इन अलफ़ाज़ को अपने ऊपर चस्पाँ करना है—

يُحِبُّونَ أَنْ يُحْمَدُوا بِمَا لَمْ يَفْعَلُوا.

“वे चाहते हैं कि जो काम इन्होंने नहीं किए, उस पर उनकी तारीफ़ हो।” (क़ुरआन, 3:188)

12 मई, 1986

आज एक मजलिस में मौत का ज़िक्र आया। मैंने कहा कि मौत इस दुनिया में सबसे ज़्यादा यक़ीनी चीज़ है। वह हर आदमी के ऊपर अपने वक़्त पर आ जाती है। मजलिस के एक साहब ने किसी क़द्र बेतकल्लुफ़ अंदाज़ में कहा कि मौत को कौन नहीं जानता? यह तो ऐसी चीज़ है, जिससे हर शख़्स बा-ख़बर है।

मैंने कहा कि लोग आम तौर पर मौत को सिर्फ़ मानते हैं कि उन्होंने इसे सुना है। मौत उनके लिए एक सुनी हुई बात है, मगर मैं अपने बारे में यह कह सकता हूँ कि मौत मेरी दरयाफ़्त है। मैं मौत को इसलिए मानता हूँ कि मैंने ख़ुद उसे शऊरी सतह पर दरयाफ़्त किया है।

इसके बाद मैंने अपना एक वाक़या बताया। ग़ालिबन 1960 की बात है। उस वक़्त मैं अपने आबाई वतन (बुढ़रिया) में था। मैं मकान की छत पर सो रहा था और घर के बाक़ी लोग नीचे सोए थे। तक़रीबन निस्फ़ शब में मेरी नींद खुली और अचानक मुझे अपना एक मामला याद आया।

एक साहब ने मुझे 100 रुपये बतौर अमानत दिए थे। यह 100 रुपये का एक नोट था। उसे मैंने नीचे के एक कमरे की अलमारी में काग़ज़ के नीचे रख दिया था। रात को मुझे यह ख़्याल आया कि अगर अचानक मुझे मौत आ जाए, तो इस रक़म का क्या होगा, क्योंकि घर का कोई शख़्स उसके बारे में वाक़िफ़ न था। चुनाँचे मैं बिस्तर से उठा, लालटेन जलाई और एक काग़ज़ पर यह लिखा कि मेरे पास फ़लाँ शख़्स के 100 रुपये बतौर अमानत हैं और फ़लाँ अलमारी में काग़ज़ के नीचे रखे हुए हैं। इस तरह का काग़ज़ लिखकर मैंने उसे अपनी जेब में रखा और दुबारा बिस्तर पर लेट गया।

उस वक़्त मेरे ज़ेहन पर मौत का इतना ग़लबा था कि अगर मैं मज़कूरा क़िस्म का काग़ज़ लिखकर अपनी जेब में न रखता, तो शायद मुझे दुबारा नींद न आती, मगर जब मैंने यह काग़ज़ अपनी जेब में रख लिया, तो उसके जल्द ही बाद दुबारा मुझे नींद आ गई। अगरचे सुबह को जब मैं सोकर उठा, तो मैं अभी ज़िंदा था। मौत हर आदमी पर लाज़िमन आती है, मगर वह हमेशा अपने वक़्त पर आती है— न इससे पहले और न उसके बाद।

13 मई, 1986

मुहम्मद रज़ा साहब अजीबो-ग़रीब आदमी हैं। वे अपने ऑफ़िस में हमेशा लड़ते रहते हैं और किसी की बात नहीं सुनते, मगर मेरी बात सुन लेते हैं। अगरचे मुझे इसकी वजह नहीं मालूम।

उन्हें अपने दफ़्तर से कुछ रक़म मिली थी। उनकी अहलिया को यह अंदेशा हुआ कि वे अपने मिज़ाज की वजह से रक़म ज़ाए कर देंगे। चुनाँचे उनकी अहलिया का पैग़ाम मेरे पास आया कि वे आपकी बात सुनते हैं। आप उनसे रक़म लेकर अपने पास रख लें और ब-वक़्त ज़रूरत देते रहें। चुनाँचे मैंने यह रक़म (दस हज़ार) उनसे लेकर बतौर

अमानत अपने पास रख ली। वे अकसर आते हैं और हस्ब-ए-ज़रूरत रक़म ले जाते हैं।

आज हमारे दफ़्तर वालों ने इंटरकॉम पर बताया कि रज़ा साहब आए हुए हैं। मैंने कहा कि उनसे पूछो कि उन्हें कितनी रक़म चाहिए। रज़ा साहब ने कहा कि इस वक़्त मैं रक़म के लिए नहीं आया हूँ। सिर्फ़ मुलाक़ात करनी है। चूँकि रज़ा साहब अपने असंतुलित ज़ेहन की वजह से अकसर ग़ैर-मुताल्लिक़ (irrelevant) और लंबी बातें करते हैं, मैंने कह दिया कि अगर रक़म की ज़रूरत हो, तो ले लें, मगर इस वक़्त मुलाक़ात का मौक़ा नहीं है।

रज़ा साहब वापस चले गए, मगर उसके चंद मिनट बाद मुझे एहसास हुआ कि मैंने उन्हें इस तरह लौटाकर सख़्त ग़लती की है। ग़लती का एहसास एक भारी बोझ की तरह दिल के ऊपर महसूस होने लगा। फ़ौरन ही मुझे एक हदीस याद आई और मैं दिल-ही-दिल में रज़ा साहब के लिए दुआ करने लगा। दुआ के अलफ़ाज़ ये थे— "ख़ुदाया! रज़ा साहब की मदद फ़रमा। ख़ुदाया! रज़ा साहब के अहवाल दुरुस्त कर दे।"

इस क़िस्म की दुआएँ मैं दिल-ही-दिल में तक़रीबन आधे घंटे तक करता रहा। इसके बाद अचानक ऐसा महसूस हुआ कि जैसे मेरे दिल का बोझ उतर गया है। जो दिल पहले सख़्त बोझिल महसूस हो रहा था, वह अचानक बिलकुल हल्का हो गया।

शायद यही मतलब है इस आयत का, जिसमें इरशाद हुआ है—

إِنَّ الْحَسَنَاتِ يُذْهِبْنَ السَّيِّئَاتِ.

"बेशक नेकियाँ दूर करती हैं बुराइयों को।" (क़ुरआन, 11:114)

आदमी से अगर कोई ग़लती हो जाए, तो उसे चाहिए कि ग़लती की मुनासबत से कोई नेक अमल करे। यह नेक अमल उसकी ग़लती को इंशा अल्लाह मिटा देगा।

14 मई, 1986

यमीन-उल-इस्लाम ख़ान मेरे भतीजे हैं। वे इंजीनियर हैं और लखनऊ में आब-पाशी के महक़मे (जल संसाधन विभाग) में सुपरिंटेंडेंट हैं। आज वे दिल्ली आए। बातचीत के दौरान उन्होंने एक सबक़-आमोज़ मक़ूला (saying) बताया—

> "जब आप हँसते हैं, तो दुनिया आपके साथ हँसती है, मगर जब आप रोते हैं, तो दुनिया आपके ऊपर हँसती है।"

यह एक बहुत बा-मअनी मक़ूला है। यह एक हक़ीक़त है कि मौजूदा दुनिया में एक आदमी दूसरे आदमी से बनने की हद तक दिलचस्पी रखता है। किसी की बिगड़ रही हो, तो इससे दूसरों को कोई दिलचस्पी नहीं।

बहुत-से लोगों का यह मिज़ाज है कि जब वे किसी से मिलते हैं, तो उसे अपना ग़म सुनाने लगते हैं, मगर इससे ज़्यादा हिमाक़त और कुछ नहीं। इस दुनिया में हर आदमी अपने मसाइल से दो-चार है। किसी को यह मौक़ा नहीं कि वह दूसरे के मसाइल में दिलचस्पी ले। वह दूसरे के दर्द में उसका हिस्सेदार बन सके।

हक़ीक़त-पसंदी की बात यह है कि इस दुनिया में आदमी पर जो कुछ बीते, वह ख़ुद उसे सहे। वह ख़ुद अपने मसाइल को हल करने की तदबीर करे।

यह दुनिया एक ऐसी दुनिया है, जहाँ हर आदमी को अपनी लड़ाई ख़ुद लड़नी पड़ती है। यहाँ कोई शख़्स दूसरे के लिए नहीं लड़ता। हर आदमी अपनी नाकामी का ख़ुद ज़िम्मेदार है। एक शख़्स न दूसरे शख़्स की कामयाबी में शरीक हो सकता है और न उसकी नाकामी में।

15 मई, 1986

मौजूदा ज़माने में बहुत-सी न्यूज़ एजेंसियाँ हैं। उनमें मशहूर न्यूज़ एजेंसियाँ हस्ब-ए-ज़ैल हैं—

असोसिएटेड प्रेस (AP)
यूनाइटेड प्रेस इंटरनेशनल (UPI)
रॉयटर्स और
फ्रेंच प्रेस एजेंसी (AFP)

फ्रेंच प्रेस एजेंसी के बारह हज़ार ख़रीदार (सब्सक्राइबर) हैं, जो 150 से ज़्यादा मुल्कों से ताल्लुक़ रखते हैं। वह अखबारों के अलावा रेडियो, टेलीविज़न, बैंक, इंटरनेशनल तंज़ीम को ख़बरें सप्लाई करती है। यह न्यूज़ एजेंसी हर रोज़ छः मुख़्तलिफ़ ज़बानों (फ्रेंच, अंग्रेज़ी, जर्मन, स्पेनिश, पुर्तगाली, अरबी) में एक मिलियन अलफ़ाज़ भेजती है, जिन्हें एक हज़ार मिलियन अफ़राद पढ़ते हैं।

इस न्यूज़ एजेंसी को यह कामयाबी डेढ़ सौ साल में हासिल हुई है। इब्तिदाअन उसे चार्ल्स हआस (Charles-Louis Havas, 1783-1858) ने 1835 में क़ायम किया। उस वक़्त कबूतरों (carrier pigeon) के ज़रिये दूर-दराज़ के मक़ामात तक ख़बरें भेजी जाती थीं। उसके बाद टेलीग्राफ़ का ज़माना आया। फिर वायरलेस का, फिर रेडियो का और अब यह सैटेलाइट के ज़रिये ख़बरें पहुँचाने के दौर में दाख़िल हो गई है। फ्रेंच प्रेस एजेंसी पहले अलफ़ाज़ की तरसील (ट्रांसमिशन) का नाम था, अब यह सैटेलाइट के ज़रिये फ़ोटो की तरसील (फोटो ट्रांसमिशन) का काम भी कर रही है। इस वक़्त उसके तीन फोटोग्राफ़िक सेंटर हैं— पेरिस, वाशिंगटन और टोक्यो (टाइम्स ऑफ़ इंडिया; 15 मई, 1986)।

मुसलमान इन मग़रिबी न्यूज एजेंसियों की शिकायत करते हैं कि वे ख़बरों को मग़रिबी नुक़्ता-ए-नज़र से पेश करती हैं और मुसलमानों

के नुक़्ता-ए-नज़र को नज़रअंदाज़ करती हैं, मगर यह सरासर बेतुकी शिकायत है। इस दुनिया में कोई शख़्स दूसरे का काम नहीं करता। मुसलमान अगर चाहते हैं कि उनकी ख़बरें उनके नुक़्ता-ए-नज़र के मुताबिक़ दुनिया में फैलें, तो वो भी 'डेढ़ सौ साला' अमल के नतीजे में एक आला सतह की न्यूज़ एजेंसी अमल में लाएँ। इसके सिवा इस मसले का कोई हल नहीं।

16 मई, 1986

निज़ामुद्दीन (दिल्ली) में हमारे मर्कज़ के सामने सड़क के दूसरी तरफ़ एक सरदार जी का दो-मंज़िला मकान है। इस मकान में बहुत-से अरबी तलबा (छात्र) किराएदार के तौर पर रहते हैं। आज एक बजे दिन में जब मैं जुमे की नमाज़ के लिए मस्जिद की तरफ़ जा रहा था, रास्ते में इनमें से तीन अरबी तलबा (छात्र) मिले। उन्होंने मुझे सलाम किया। मैंने भी उन्हें सलाम का जवाब दिया। इसके बाद मैंने पूछा— "आप किस मुल्क से हैं (من ای بلد انتم)?" उनमें से एक नौजवान ख़ास लहजे में बोला— "अल्लाह के मुल्क फ़िलिस्तीन से (من بلاد الله فلسطين)।" उसने यह जुमला कहा और फिर फ़ौरन अपने साथियों के साथ आगे बढ़ गया।

इन फ़िलिस्तीनी छात्रों (तलबा) से मेरी मुलाक़ात बहुत कम हो सकी है, मगर चूँकि वे बिलकुल सामने वाले मकान में क़ियाम-पज़ीर (रहते) हैं, इसलिए मैं उन्हें पिछले एक साल के ज़्यादा अर्से से देख रहा हूँ। सबसे ज़्यादा अजीब बात है कि ये लोग अगरचे यहाँ तालीम की ग़र्ज़ से आए हैं, मगर बहुत कम ऐसा हुआ है कि वे पढ़ते हुए दिखाई दें। मुमकिन है कि वे अपने बंद कमरों में पढ़ते हों, मगर अपनी छत पर और अपने सहन (आँगन) में वे हमेशा तफ़रीह (मनोरंजन) करते हुए नजर आते हैं और तफ़रीह का यह सिलसिला मिनटों नहीं, बल्कि घंटों जारी रहता है। एक रोज़ मैंने देखा कि वे एक सपेरे को पकड़ लाए और तक़रीबन आधे दिन तक सब जमा होकर साँप का खेल देखते रहे और

उसके साथ तस्वीरें खिंचवाते रहे। अकसर उनके कमरे से टेप रिकॉर्डर बजने की आवाज़ आती है, जो बहुत देर तक जारी रहती है। कभी वे एयर गन लेकर सारा दिन चिड़ियों पर निशाना लगाते रहते हैं वग़ैरह।

मुझे अपने बाहर के सफ़रों में कुछ ऐसे फ़िलिस्तीनी मिले हैं, जो निहायत संजीदा थे, मगर ग़ालिबन बेशतर फ़िलिस्तीनियों का मिज़ाज वही है, जिसका नक़्शा ऊपर की मिसाल में नज़र आता है। जो लोग इस क़दर ग़ैर-संजीदा हों, जो इतनी बेदर्दी के साथ अपने वक़्त को बरबाद करें, वे मौजूदा मुक़ाबले की दुनिया में किस तरह कामयाब हो सकते हैं?

17 मई, 1986

नई दिल्ली के एक हॉल में मुसलमानों ने एक जलसा किया। इसमें मुसलमानों के एक मशहूर क़ाइद (नेता) ने तक़रीर की। जलसे में हिंदू सहाफ़ी (पत्रकार) और दानिशवर (विचारक) भी बुलाए गए थे। तक़रीर का ख़ास मौज़ू इस्लामी शरीयत था। हॉल में शाह बानो के मामले पर मुसलमानों ने जो ज़ोर-ओ-शोर दिखाया है, उसकी वजह से ग़ैर-मुसलमानों में शरीयत के बारे में उमूमी तौर पर एक तजस्सुस (जिज्ञासा) पैदा हो गया है। यह जलसा 4 मई, 1986 को हुआ। ख़ुसूसी मुक़र्रर ने पुरजोश तक़रीर की, मगर तक़रीर में ज़्यादातर इस क़िस्म की बातें थीं कि शरीयत हमें जान से भी ज़्यादा अज़ीज़ है। हम किसी क़ीमत पर शरीयत के अंदर मुदाख़लत को बरदाश्त नहीं कर सकते वग़ैरह।

एक हिंदू ने तक़रीर के बाद कहा कि मौजूदा दौर में इस क़िस्म की बातें क़ुबूल नहीं की जा सकतीं। अगर आप यह कहें कि हमारी शरीयत में लिखा है कि बहू को तेल छिड़ककर जला दो, तो क्या आप अपनी बहू को जला देंगे और मुल्क ख़ामोश रहेगा। आपको अपने क़ानून की माक़ूलियत (reasonableness) बतानी होगी। सिर्फ़ दावा काफ़ी नहीं हो सकता।

यही मौजूदा ज़माने में हमारे तमाम लिखने और बोलने वालों का हाल है। 'मुदाख़लत फ़िद्दीन' के नाम पर वे ज़बरदस्त जोश दिखाएँगे, मगर दीन की माक़ूलियत (rationality) साबित करने के लिए मेहनत नहीं करेंगे। हालाँकि ज़माना अक़्ल का ज़माना है। आज का आदमी अक़्ल की सतह पर हर चीज़ को जाँचता है। दीन को असरी उस्लूब (current style) में पेश करने का हुक्म है, मगर मुसलमान इसे सिर्फ़ उस्लूब-ए-माज़ी (classical style) में पेश कर रहे हैं।

इन तजुर्बात से मुतास्सिर होकर ही मैं आजकल एक किताब मुरत्तब (तैयार) कर रहा हूँ, जिसका नाम है— ख़ातून-ए-इस्लाम। मेरा यह मौज़ू नहीं। मेरा असल मौज़ू दावत है, मगर मुसलमानों का हाल यह है कि उन्होंने शाह बानो के मामले को लेकर शरीयत का हंगामा खड़ा कर दिया, मगर शरीयत को ज़माने के उस्लूब में पेश करने के लिए वे कुछ नहीं कर रहे हैं। इसलिए मुझे यह ज़िम्मेदारी क़ुबूल करनी पड़ी।

18 मई, 1986

मिस्टर सुरजीत सिंह बरनाला इस वक़्त पंजाब के चीफ़ मिनिस्टर हैं। उनके हुक्म से 30 अप्रैल, 1986 को हथियारबंद फ़ौज गोल्डन टेंपल में दाख़िल हो गई, ताकि वहाँ से दहशत-पसंदों को निकाले।

यह वाक़या सिख रिवायात के मुताबिक़ जुर्म था। इससे गुरुद्वारा की बेहुरमती हुई। चुनाँचे अकाली तख्त ने मिस्टर बरनाला के नाम नोटिस जारी किया। वे नोटिस के मुताबिक़ 17 मई, 1986 को अकाली तख़्त के सामने हाज़िर हुए। मिस्टर बरनाला ने अकाली तख़्त के सामने अपने जुर्म का इक़रार किया। इसके बाद अकाली तख़्त की तरफ़ से उनके लिए सज़ा का ऐलान किया गया। इस सज़ा की पाँच दफ़आत (धाराएँ) थीं। अंग्रेज़ी अखबार की रिपोर्टिंग के मुताबिक़ उसकी एक दफ़ा यह थी—

To perform the service of dusting the shoes at any gurudwara for one week.

वे एक हफ़्ते तक किसी गुरुद्वारा में जूते साफ़ करने की ख़िदमत अंजाम दें (टाइम्स ऑफ़ इंडिया; 18 मई, 1986)। मिस्टर बरनाला ने सिर झुकाकर ऐलान किया कि वे अकाली तख़्त के फ़ैसले को क़ुबूल करते हैं।

सिख हज़रात ने आजकल आज़ाद सिखिस्तान बनाने के लिए तोड़-फोड़ की जो सियासत चला रखी है, उससे मुझे सद फ़ीसद इख़्तिलाफ़ है। मैं इसे सिर्फ़ हिमाक़त (मूर्खता) समझता हूँ, मगर मज़कूरा वाक़या बताता है कि सिख हज़रात की मज़हबी तंज़ीम कितनी मज़बूत है। यही ताक़त ईरान में शिया पेशवाओं को हासिल थी, मगर अजीब बात है कि ईरान में भी ऐसी ताक़त का इस्तेमाल तख़रीब (destruction) के लिए किया गया और पंजाब में भी इसका इस्तेमाल सिर्फ़ तख़रीब के लिए हो रहा है।

19 मई, 1986

“हर आदमी झूठे इस्लाम में आगे है, मगर वह सच्चे इस्लाम से दूर है”— बे-इख़्तियार मेरी ज़बान से निकला। आजकल के मुसलमानों को मैं देखता हूँ, तो तमाम मुसलमान, ख़्वाह वे असाग़िर (small ones) हों या अकाबिर (great ones), मुझे इसी एक सतह पर नजर आते हैं। हर आदमी का यह हाल है कि वह इस्लाम पर पुरजोश तक़रीरें कर रहा है। हर आदमी इस्लाम पर मज़ामीन लिखकर छाप रहा है। हर आदमी इस्लाम का झंडा उठाए हुए खड़ा है, मगर जब अमली तजुर्बा कीजिए, तो हर मुसलमान ऐसा नज़र आएगा, जैसे वह इस्लाम से बिलकुल ख़ाली हो।

आजकल के मुसलमानों का हाल यह है कि वे अपने ख़िलाफ़ एक लफ़्ज़ नहीं सुन सकते, मगर दूसरों के ख़िलाफ़ हर आदमी तक़रीर व तहरीर (लेख) का मुजाहिद (योद्धा) बना हुआ है। अपनी ज़ात के

मामले में उसके सोचने का अंदाज़ दूसरा है और दूसरों के बारे में उसके सोचने का अंदाज़ दूसरा। किसी को एक अमानत सौंपकर आप यह उम्मीद नहीं कर सकते कि वह उस अमानत में ख़यानत नहीं करेगा। किसी शख़्स को आप एक सच्ची नसीहत करें, तो आपकी यह उम्मीद कभी पूरी न होगी कि वह नसीहत को माने और उसके मुताबिक़ अपनी ज़िंदगी को ढाले। एक शख़्स के अंदर अना जाग उठे, तो नामुमकिन है कि क़ुरआन और हदीस का कोई भी हवाला उसे दुबारा अपने ग़लत रवैये से दूर कर सके।

आज मुसलमानों का हाल यह है कि वे ख़्वाह कितनी ही खुली हुई ग़लती करें, वे कभी अपनी ग़लती का एतिराफ़ नहीं करेंगे। वे एक बार बे-इंसाफ़ी की तरफ़ क़दम उठा दें, तो उसे किसी भी तरह इंसाफ़ की तरफ़ वापस लाना मुमकिन नहीं है। मौजूदा ज़माने के मुसलमान फ़िक्री ज़वाल के एतिबार से आख़िरी हद तक पहुँच चुके हैं। हत्ता कि उनका हाल देखकर कभी-कभी मुझे अंदेशा होने लगता है कि वे, बाइबल के अलफ़ाज़ में, 'मर्दूद चाँदी' (Rejected Silver) तो नहीं हो गए हैं, जिस तरह उनसे पहले की अहले-किताब क़ौमें अपने ज़वाल के ज़माने में हो गई थीं, जबकि ख़ुदा ने उन्हें रिजेक्ट कर दिया था। जैसा कि बाइबल में बयान किया गया है—

> "वे सब-के-सब निहायत सरकश हैं। वे ग़ीबत करते हैं। वे ताँबा और लोहा हैं। वे सब-के-सब मामले के खोटे हैं। धूँकनी जल गई। सीसा आग से भस्म हो गया। साफ़ करने वाले ने बे-फ़ायदा साफ़ किया, क्योंकि शरीर अलग नहीं हुए। वे 'मर्दूद चाँदी' कहलाएँगे, क्योंकि ख़ुदावंद ने इन्हें रद्द कर दिया है।"
>
> (यरमयाह, 6:28-30)
>
> They are all hardened rebels, going about to slander. They are bronze and iron; they all act

corruptly. The bellows blow fiercely to burn away the lead with fire, but the refining goes on in vain; the wicked are not purged out. They are called REJECTED SILVER, because the Lord has rejected them. (Jeremiah 6:28-30)

ऐब-ख़्वानी, क़सीदा-ख़्वानी

मुसलमानों के लिखने और बोलने वाले लोग मौजूदा ज़माने में सिर्फ़ दो कल्चर को जानते हैं— ऐब-ख़्वानी (दोष निकालना) या चापलूसी करना। अपने मफ़रूज़ा अकाबिर के बारे में सिर्फ़ क़सीदा-ख़्वानी और दूसरों के बारे में सिर्फ़ ऐब-ख़्वानी। मौजूदा ज़माने में मुसलमानों में यह कल्चर इतना आम है कि शायद ही इसमें कोई इस्तिस्ना (exception) पाया जाए। अपने हलक़े की ज़िंदा या मुर्दा शख़्सियतों की लफ़्ज़ी क़सीदा-ख़्वानी और अपने हलक़े से बाहर के लोगों की लफ़्ज़ी ऐब-ख़्वानी। न इनकी क़सीदा-ख़्वानी दलाइल पर मबनी होती है और न इनकी ऐब-ख़्वानी दलाइल की ज़बान में होती है। वे अपनों के बारे में सिर्फ़ तारीफ़ की ज़बान जानते हैं और दूसरों के बारे में सिर्फ़ तन्क़ीस (fault-finding) की ज़बान।

यह उम्मत के दौर-ए-ज़वाल का ज़ाहिरा है। उम्मत जब अपने ज़माना-ए-उरूज में हो, तो वह हर शख़्स को मेरिट (merit) के एतिबार से जाँचती है। वह हर एक के बारे में मेरिट की बुनियाद पर बिना पक्षपात के राय क़ायम करती है, ख़्वाह वह अपना हो या अपने दायरे से बाहर कोई शख़्स; मगर जब उम्मत दौर-ए-ज़वाल में पहुँच जाए, तो उस वक़्त उसका हाल यह हो जाता है कि वह इंसानों को अपने और ग़ैर में तक़सीम कर देती है। अपनों के बारे में

उसके पास सिर्फ़ अच्छे अलफ़ाज़ होते हैं और ग़ैरों के बारे में सिर्फ़ बुरे अलफ़ाज़।

जब उम्मत में इंसानों को मेरिट पर जाँचने का रिवाज हो, तो समझिए कि उम्मत ज़िंदा है और जब उम्मत के लिखने और बोलने वाले लोग हक़ के बजाय मद्ह (प्रशंसा) और ज़म (निंदा) की ज़बान बोलने लगें, तो समझिए कि उम्मत मुर्दा हो चुकी है। जब उम्मत पर यह वक़्त आ जाए, तो करने का सिर्फ़ एक काम बाक़ी रहता है, वह है— अफ़राद की इस्लाह। उम्मत जब ज़िंदा हो, तो यह नतीजा समाजिक सतह पर काम करने से सामने आ सकता है, लेकिन जब उम्मत अपने दौर-ए-ज़वाल में पहुँच जाए, तो उस वक़्त अफ़राद को तलाश कीजिए और अफ़राद की इस्लाह को अपना मक़सद बना लीजिए। इसके अलावा कोई और तरीक़ा हरगिज़ नतीजाख़ेज़ नहीं हो सकता। जो लोग उम्मत के दौर-ए-ज़वाल में मबनी बर उम्मत बड़े-बड़े प्रोग्राम बनाएँ, वे बिला-शुब्हा फ़ितरत के क़ानून से आख़िरी हद तक नावाक़िफ़ हैं। ऐसे मुस्लिहीन (reformer) ख़ुद क़ाबिल-ए-इस्लाह हैं, वे उम्मत के मुस्लेह (reformer) नहीं बन सकते।

No. 50760/90

शांति और आध्यात्मिकता पर और किताबें।

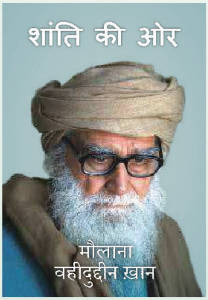

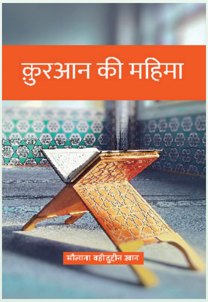

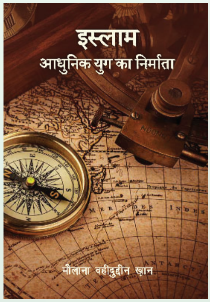

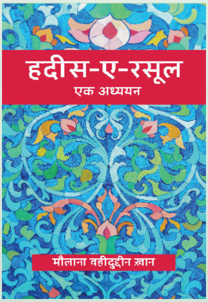

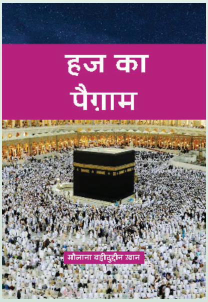

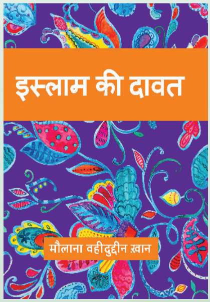

आध्यात्मिक सेट

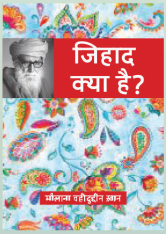

₹30/-

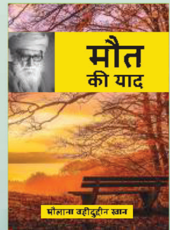

₹40/-

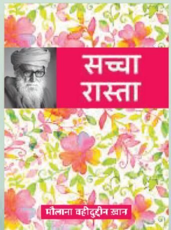

₹20/-

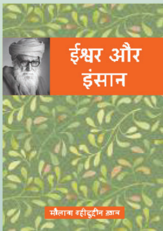

₹40/-

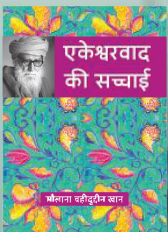

₹30/-

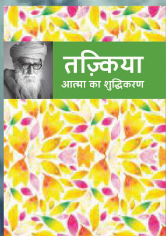

₹45/-

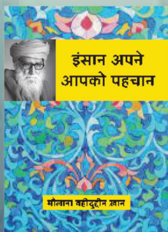

₹20/-

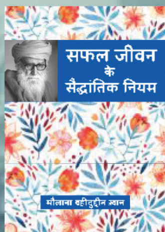

₹40/-